प्रतिष्ठामें बल न पड़ने पावे। यदि किसीने औरोंको यह कहनेका अवसर दिया कि ओरछेवाले तलवारसे न जीत सके तो धाँधली कर बैठे, वह अपनेको जातिका शत्रु समझे।

सूर्य निकल आया था। एकाएक नगाड़े पर चोब पड़ी और आशा तथा भयने लोगोंके मनको उछालकर मुँहतक पहुँचा दिया। कालदेव और क़ादिरखाँ दोनों लंगोट कसे शेरोंकी तरह अखाड़ेमें उतरे और गले मिल गये। तब दोनों तरफ़से तलवारें निकलीं और दोनोंके बग़लोंमें चली गई। फिर बादलके दो टुकड़ोंसे बिजलियाँ निकलने लगीं। पूरे तीन घण्टेतक यही मालूम होता था कि दो अंगारे हैं। हज़ारों आदमी खड़े तमाशा देख रहे थे और मैदानमें आधीरातका सा सन्नाटा छाया था। हाँ, जब कभी कालदेव कोई गिरहदार हाथ चलाता या कोई पेचदार वार बचा जाता, तो लोगोंकी गर्दनें आप ही आप उठ जातीं, पर किसीके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकलता था। अखाड़ेके अन्दर तलवारोंकी खींचतान थी; पर देखनेवालोंके लिए अखाड़ेके बाहर मैदानमें इससे भी बढ़ कर तमाशा था। बार बार जातीय प्रतिष्ठाके विचारसे मनके भावोंको रोकना और प्रसन्नता या दुःखका शब्द मुँहसे बाहर न निकलने देना तलवारोंके वार बचानेसे अधिक कठिन काम था। एकाएक क़ादिरखाँ 'अल्लाहो अकबर' चिल्लाया, मानों बादल गरज उठा और उसके गरजते ही कालदेवके सिर पर बिजली गिर पड़ी।

कालदेवके गिरते ही बुंदेलोंको सब्र न रहा। हर एक चेहरे पर निर्बल क्रोध और कुचले हुए घमण्डकी तसवीर खिंच गई। हज़ारों आदमी जोशमें आकर अखाड़े पर दौड़े, पर हरदौलने कहा—'खबरदार! अब कोई आगे न बढ़े।' इस आवाज़ने पैरोंके साथ जंजीरका काम किया। दर्शकोंको रोककर जब वे अखाड़ेमें गये और कालदेवको देखा, तो

आँखोंमें आँसू भर आये। ज़ख़मी शेर जमीन पर पड़ा तड़फ रहा था। उसके जीवनकी तरह उसके तलवारके दो टुकड़े हो गये थे।

आजका दिन बीता। रात आई। पर बुंदेलोंकी आँखोंमें नींद कहाँ? लोगोंने करवटें बदलकर रात काटी। जैसे दुःखित मनुष्य विकलतासे सुबहकी बाट जोहता है, उसी तरह बुंदेले रह-रहकर आकाशकी तरफ़ देखते और उसकी धीमी चाल पर झुँझलाते थे। उनके जातीय घमण्ड पर गहरा घाव लगा था। दूसरे दिन ज्योंही सूर्य्य निकला, तीन लाख बुंदेले तालाबके किनारे पहुँचे। जिस समय भालदेव शेरकी तरह अखाड़ेकी तरफ चला, दिलोंमें धड़कन सी होने लगी। कल जब कालदेव अखाड़ेमें उतरा था बुंदेलोंके हौसले बढ़े हुए थे, पर आज वह बात न थी। हृदयोंमें आशाकी जगह डर घुसा हुआ था। जब क़ादिरख़ाँ कोई चुटीला वार करता तो लोगोंके दिल उछल कर होठोंतक आ जाते थे। सूर्य्य सिर पर चढ़ा आता था और लोगोंके दिल बैठे जाते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि भालदेव अपने भाईसे फुर्तीला और तेज़ था। उसने कई बार क़ादिरख़ाँको नीचा दिखलाया, पर दिल्लीका निपुण पहलवान हर वार सम्हल जाता था। पूरे तीन घंटेतक दोनों बहादुरोंमें तलवारें चलती रहीं। एकाएक खट्टाकेकी आवाज़ हुई और भालदेवकी तलवारके दो टुकड़े हो गये। राजा हरदौल अखाड़ेके सामने खड़े थे। उन्होंने भालदेवकी तरफ़ तेज़ीसे अपनी तलवार फेंकी। भालदेव तलवार लेनेके लिऐ झुका ही था कि क़ादिरख़ाँकी तलवार उसकी गर्दनपर आ पड़ी। घाव गहरा न था, केवल एक 'चरका' था, पर उसने लड़ाईका फैसला कर दिया।

हताश बुंदेले अपने अपने घरोंको लौटे। यद्यपि भालदेव अब भी लड़नेको तैयार थे, पर हरदौलने समझाकर कहा कि, "भाइयो! हमारी

हार उसी समय हो गई, जब हमारी तलवारने जवाब दे दिया। यदि हम क़ादिरख़ाँकी जगह होते तो निहत्थे आदमी पर वार न करते और जबतक हमारे शत्रुके हाथमें तलवार न आ जाती हम उस पर हाथ न उठाते; पर क़ादिरख़ाँमें यह उदारता कहाँ? बलवान् शत्रुका सामना करनेमें उदारताको ताक पर रख देना पड़ता है। तो भी हमने दिखा दिया है कि तलवारकी लड़ाईमें हम उसके बराबर हैं और अब हमको यह दिखाना रहा है कि हमारी तलवारमें भी वैसा ही जौहर है।" इसी तरह लोगोंको तसल्ली देकर राजा हरदौल रनवासको गये।

कुलीनाने पूछा—"लाला! आज दंगलका क्या रंग रहा?"

हरदौलने सिर झुकाकर जवाब दिया—"आज भी वही कलकासा हाल रहा।"

कुलीना—"क्या भालदेव मारा गया?"

हरदौल—"नहीं, जानसे तो नहीं, पर हार हो गई।"

कुलीना—"तो अब क्या करना होगा?"

हरदौल—"मैं स्वयं इसी सोचमें हूँ। आजतक ओरछेको कभी नीचा न देखना पड़ा था। हमारे पास धन न था; पर अपनी वीरताके सामने हम राज और धनको कोई चीज़ नहीं समझते थे। अब हम किस मुँहसे अपने वीरताका घमण्ड करेंगे—ओरछेकी और बुंदेलोंकी लाज अब जाती है।"

कुलीना—"क्या अब कोई आस नहीं है?"

हरदौल—"हमारे पहलवानोंमें वैसा कोई नहीं है, जो उससे बाज़ी ले जाय। भालदेवकी हारने बुंदेलोंकी हिम्मत तोड़ दी है। आज सारे शहरमें शोक छाया हुआ है। सैकड़ों घरोंमें आग नहीं जली। चिराग

रोशन नहीं हुआ। हमारे देश और जातिकी वह चीज़ जिससे हमारा मान था अब अन्तिम स्वाँस ले रही है, भालदेव हमारा उस्ताद था। उसके हार चुकनेके बाद मेरा मैदानमें आना धृष्टता है; पर बुंदेलोंकी साख जाती है तो मेरा सिर भी उसके साथ जायगा। क़ादिरख़ाँ बेशक अपने हुनरमें एक ही है, पर हमारा भालदेव कभी उससे कम नहीं। उसकी तलवार यदि भालदेवके हाथमें होती तो मैदान ज़रूर उसके हाथ रहता। ओरछेमें केवल एक तलवार है, जो क़ादिरख़ाँकी तलवारका मुँह मोड़ सकती है। वह भैय्याकी तलवार है। अगर तुम ओरछेकी नाक रखना चाहती हो तो उसे मुझे दे दो। यह हमारी अन्तिम चेष्टा होगी; यदि उस बार भी हार हुई तो ओरछेका नाम सदैवके लिए डूब जायगा।"

कुलीना सोचने लगा। तलवार इनको दूँ या न दूँ। राजा रोक गये हैं। उनकी आज्ञा थी कि किसी दूसरेकी परछाहीं भी उस पर न पड़ने पावे। क्या ऐसी दशामें मैं उनकी आज्ञाका उल्लंघन करूं तो वे नाराज होंगे? कभी नहीं। जब वे सुनेंगे कि मैंने कैसे कठिन समयमें तलवार निकाली है; तो उन्हें सच्ची प्रसन्नता होगी। बुन्देलोंकी आन किसको इतनी प्यारी है? उनसे ज्यादा ओरछेकी भलाई चाहनेवाला कौन होगा? इस समय उनकी आज्ञाका उल्लंघन करना ही आज्ञा मानना है। यह सोचकर कुलीनाने तलवार हरदौलको दे दी।

सबेरा होते ही यह खबर फैल गई कि राजा हरदौल क़ादिरख़ाँसे लड़नेके लिए जा रहे हैं। इतना सुनते ही लोगोंमें सनसनी सी फैल गई और वे चौंक उठे। पागलोंकी तरह लोग अखाड़ेकी ओर दौड़े। हरएक आदमी कहता था कि जबतक हम जीते हैं हम महाराजको लड़ने नहीं देंगे। पर जब लोग अखाड़ेके पास पहुँचे तो देखा कि

अखाड़ेमें बिजलियाँ सी चमक रही हैं। बुन्देलोंके दिलों पर उस समय जैसी बीत रही थी, उसका अनुमान करना कठिन है। उस समय उस लम्बे चौड़े मैदानमें जहाँतक निगाह जाती थी आदमी ही आदमी नज़र आते थे। पर चारों तरफ़ सन्नाटा था। हर एक आँख अखाड़ेकी तरफ लगी हुई थी और हर एकका दिल हरदौलकी मंगलकामनाके लिए ईश्वरका प्रार्थी था। क़ादिरखाँका एक एक वार हज़ारों दिलोंके टुकड़े कर देता था और हरदौलकी एकएक काटसे मनोंमें आनन्दकी लहरें उठती थीं। अखाड़ेमें दो पहलवानोंका सामना था अखाड़ेके बाहर 'आशा और निराशा' का। आखिर घड़ियालने पहला पहर बजाया और हरदौलकी तलवार बिजली बनकर क़ादिरके सिर पर गिरी। यह देखते ही बुंदेले मारे आनन्दके उन्मत्त हो गये। किसीको किसीकी सुधि न रही। कोई किसीसे गले मिलता, कोई उछलता और कोई छलाँगे भरता था। हज़ारों आदमियों पर वीरताका नशा छा गया। तलवारें स्वयं म्यानसे निकल पड़ीं, भाले चमकने लगे। जीतकी खुशीमें सैकड़ों जानें भेंट हो गईं। पर जब हरदौल अखाड़ेसे बाहर आये और उन्होंने बुंदेलोंकी ओर तेज़ निगाहोंसे देखा तो आनकी आनमें लोग सँभल गये। तलवारें म्यानोंमें जा छिपीं। खयाल आ गया। यह खुशी क्यों, यह उमंग क्यों, और यह पागलपन किस लिए? बुंदेलोंके लिए यह कोई नई बात नहीं हुई। इस विचारने लोगोंका दिल ठंडा कर दिया। हरदौलकी इस वीरताने उसे हरएक बुंदेलेके दिलमें मान-प्रतिष्ठाकी उस ऊँची जगह पर जा बिठाया जहाँ न्याय और उदारता भी उसे न पहुँचा सकती थी। वह पहलेहीसे सर्वप्रिय था; और अब वह अपनी जातिका वीरवर और बुंदेला-दिलावरीका सिरमौर बन गया।

[३]

राजा जुझारसिंहने भी दक्षिणमें अपनी योग्यताका परिचय दिया। वे केवल लड़ाईमें ही वीर न थे, बल्कि राज्यशासनमें भी अद्वितीय थे। उन्होंने अपने सुप्रबन्धसे दक्षिण प्रान्तको बलवान् राज्य बना दिया और वर्षभरके बाद बादशाहसे आज्ञा लेकर वे ओरछेकी तरफ़ चले। ओरछेकी याद उन्हें सदैव बेचैन करती रही। आह ओरछा! वह दिन कब आवेगा कि फिर तेरे दर्शन होंगे। राजा मंजिलें मारते चले आते थे। न भूख थी, न प्यास, ओरछेवालोंकी मुहब्बत खींचे लिए आती थी। यहाँतक कि ओरछेके जंगलोंमें आ पहुँचे! साथके आदमी पीछे छूट गये। दो पहरका समय था। धूप तेज़ थी। वे घोड़ेसे उतरे और एक पेड़की छाँहमें जा बैठे। भाग्यवश आज हरदौल भी जीतकी खुशीमें शिकार खेलने निकले थे। सैकड़ों बुन्देला सरदार उनके साथ थे। सब अभिमानके नशेमें चूर थे। उन्होंने राजा जुझारसिंहको अकेले बैठे देखा, पर वे अपने घमण्डमें इतने डूबे हुए थे कि इनके पासतक न आये। समझा कोई यात्री होगा हरदौलकी आँखोंने भी धोखा खाया। वे घोड़े पर सवार अकड़ते हुए जुझारसिंहके सामने आये और पूछना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाईसे आँख मिल गई। पहचानते ही घोड़ेसे कूद पड़े और उनको प्रणाम किया। राजाने भी उठकर हरदौलको छातीसे लगाया। पर उस छातीमें अब भाईकी मुहब्बत न थी। मुहब्बतकी जगह ईर्षाने घेर ली थी, और केवल इसी लिए कि हरदौल दूरसे नँगे पैर उनकी तरफ़ न दौड़ा। उसके सवारोंने दूरहीसे उनकी अभ्यर्थना न की। सन्ध्या होते होते दोनों भाई ओरछे पहुँचे। राजाके लौटनेका समाचार पाते ही नगरमें प्रसन्नताकी दुंदुभी बजने लगी। हर जगह आनन्दोत्सव होने लगा और तुरताफुरती सारा

शहर जगमगा उठा। आज रानी कुलीनाने अपने हाथोंसे भोजन बनाया। नौ बजे होंगे। लौंड़ीने आकर कहा—महाराज, भोजन तैयार है। दोनों भाई भोजन करने गये। सोनेके थालमें राजाके लिए भोजन परोसा गया और चाँदीके थालमें हरदौलके लिए। कुलीनाने स्वयं भोजन बनाया था, स्वयं थाल परोसे थे, और स्वयं ही सामने लाई थी, पर दिनोंका चक्र कहो, या भाग्यके दुर्दिन, उसने भूलसे सोनेका थाल हरदौलके आगे रख दिया और चाँदीका राजाके सामने। हरदौलने कुछ ध्यान न दिया। वह वर्षभरसे सोनेके थालमें खाते खाते उसका आदी हो गया था, पर जुझारसिंह तलमला गये। ज़बानसे कुछ न बोले, पर तीवर बदल गये और मुँह लाल हो गया। रानीकी तरफ़ घूर कर देखा और भोजन करने लगे, पर ग्रास विष मालूम होता था। दो चार ग्रास खाकर उठ आये। रानी उनके तीवर देखकर डर गई। आज कैसे प्रेमसे उसने भोजन बनाया था, कितनी प्रतीक्षाके बाद यह शुभ दिन आया था, उसके उल्लासका कोई पारावार न था। पर राजाके तीवर देखकर उसके प्राण सूख गये। जब राजा उठ गये और उसने थालको देखा तो कलेजा धकसे हो गया और पैरतलेसे मिट्टी निकल गई। उसने सिर पीट लिया। ईश्वर! आज रात कुशलपूर्वक कटे, मुझे शकुन अच्छे दिखाई नहीं देते।

राजा जुझारसिंह शीशमहलमें लेटे। चतुर नाइनने रानीका शृंगार किया और वह मुसकुराकर बोली—कल महाराजसे इसका इनाम लूँगी। यह कहकर वह चली गई। परंतु कुलीना वहाँसे न उठी। वह गहरे सोचमें पड़ी हुई थी। उनके सामने कौनसा मुँह लेकर जाऊँ। नाइनने नाहक मेरा शृंगार कर दिया। मेरा शृंगार देखकर वे खुश भी होंगे? मुझसे इस समय अपराध हुआ है, मैं अपराधिनी हूँ, मेरा

उनके पास इस समय बनाव श्रृंगार करके जाना उचित नहीं। नहीं, नहीं!! आज मुझे उनके पास भिखारिनीके भेषमें जाना चाहिए। मैं उनसे क्षमादान मागूँगी। इस समय मेरे लिए यही उचित है। यह सोच कर रानी बड़े शीशेके सामने खड़ी हो गई। वह अप्सरासी माॡम होती थी। सुन्दरताकी कितनी ही तसवीरें उसने देखी थीं; पर उसे इस समय शीशेकी तसवीर सबसे ज्यादा खूबसूरत माॡम होती थी।

सुन्दरता और आत्मरुचिका साथ है। हल्दी बिना रंगके नहीं रह सकती। थोड़ी देरके लिए कुलीना सुंदरताके मदसे फूल उठी। वह तन कर खड़ी हो गई। लोग कहते हैं कि सुंदरतामें जादू है और वह जादू जिसका कोई उतार नहीं। धर्म्म और कर्म्म, तन और मन, सब सुंदरता पर न्यौछावर हैं। मैं सुन्दर न सही, ऐसी कुरूपा भी नहीं हूँ। क्या मेरी सुंदरतामें इतनी भी शक्ति नहीं है कि महाराजसे मेरा अपराध क्षमा करा सके। ये बाहुलतायें जिस समय उनके गलेका हार होंगी, ये आँखें जिस समय प्रेमके मदसे लाल होकर देखेंगीं, तब क्या मेर सौन्दर्यकी शीतलता उनकी क्रोधाग्निको ठंडा न कर देगी? पर थोड़ी देरमें रानीको ज्ञान हुआ। आह! यह मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ! मेरे मनमें ऐसी बातें क्यों आती हैं? मैं अच्छी हूँ या बूरी हूँ, उनकी चेरी हूँ। मुझसे अपराध हुआ है, मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए। यह श्रृंगार और बनाब इस समय उपयुक्त नहीं है। यह सोचकर रानीने सब गहने उतार दिये। इतरमें बसी हुई हरे रेशमकी साड़ी अलग कर दी। मोतियोंसे भरी माँग खोल दी और वह खूब फूट फूटकर रोई। हाय! यह मिलापकी रात वियोगकी रातसे भी विशेष दुःखदायिनी है। भिखारिनीका भेष बनाकर रानी शीशमहलकी ओर चली। पैर आगे बढ़ते थे, पर मन पीछे हटा जाता था।

दरवाजेतक आई; पर भीतर पैर न रख सकी। दिल धड़कने लगा। ऐसा जान पड़ा मानों उसके पैर थर्रा रहे हैं। राजा जुझारसिंह बोले—" कौन है ?—कुलीना ! भीतर क्यों नहीं आ जाती ? "

कुलीनाने जी कड़ा करके कहा—" महाराज ! कैसे आऊँ, मैं अपनी जगह क्रोधको बैठा हुआ पाती हूँ। "

राजा—" यह क्यों नहीं कहती कि मन दोषी है, इस लिए आँखें नहीं मिलाने देता। "

कुलीना—" निस्सन्देह मुझसे अपराध हुआ है, पर एक अबला आपसे क्षमाका दान माँगती है। "

राजा—" इसका प्रायश्चित्त करना होगा। "

कुलीना—" क्योंकर ? "

राजा—" हरदौलके खूनसे। "

कुलीना सिरसे पैरतक काँप गई। बोली—" क्या इस लिए कि आज मेरी भूलसे ज्योनारके थालोंमें उलट फेर हो गया ! "

राजा—" नहीं ! इस लिए कि हरदौलने तुम्हारे प्रेममें उलट फेर कर दिया। "

जैसे आगकी आँचसे लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानीका मुँह लाल हो गया। क्रोधकी अग्नि सद्भावोंका भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय, सब जलके राख हो जाते हैं। एक मिनिटतक रानीको ऐसा मालूम हुआ, मानों दिल और दिमाग दोनों खौल रहे हैं। पर उसने आत्मदमनकी अन्तिम चेष्टासे अपनेको सम्हाला, केवल इतना बोली—" हरदौलको मैं अपना लड़का और भाई समझती हूँ। "

राजा उठ बैठे और कुछ नर्म स्वरसे बोले—" नहीं हरदौल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूँ, जिसने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया। कुलीना! मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे तुम्हारे ऊपर घमंड था। मैं समझता था चाँद सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता। पर आज मुझे माळूम हुआ कि, यह मेरा लड़कपन था। बड़ोंने सच कहा है कि, स्त्रीका प्रेम पानीकी धार है, जिस ओर ढाल पाता है उधर ही बह जाता है। "—सोना ज्यादा गर्म होकर पिघल जाता है। कुलीना रोने लगी। क्रोधकी आग पानी बनकर आँखोंसे निकल पड़ी। जब आवाज़ वशमें हुई, तो बोली—" मैं आपके इस सन्देहको कैसे दूर करूँ ?"

राजा—" हरदौलके खूनसे।"

रानी—" मेरे खूनसे दाग न मिटेगा ?"

राजा—" तुम्हारे खूनसे और पक्का हो जायगा।"

रानी—" और कोई उपाय नहीं है ?"

राजा—" नहीं।"

रानी—" यह आपका अन्तिम विचार है ?"

राजा—" हाँ; यह मेरा अन्तिम विचार है। देखो, इस पानदानमें पानका बीड़ा रक्खा है। तुम्हारे सतीत्वकी परीक्षा यही है कि तुम हरदौलको इसे अपने हाथसे खिला दो। मेरे मनका भ्रम उसी समय निकलेगा, जब इस घरसे हरदौलकी लाश निकलेगी।"

रानीने घृणाकी दृष्टिसे पानके बीड़ेको देखा और वह उलटे पैर लौट आई।

रानी सोचने लगी, क्या हरदौलके प्राण लूँ ? निर्दोष, सच्चरित्र, वीर हरदौलकी जानसे अपने सतीत्वकी परीक्षा दूँ ? उस हरदौलके

खूनसे अपना हाथ काला करूँ जो मुझे बहन समझता है? यह पाप किसके सिर पड़ेगा? क्या एक निर्दोषका खून रंग न लायेगा? आह! अभागी कुलीना! तुझे आज अपनी सतीत्वकी परीक्षा देनेकी आवश्यकता पड़ी है और वह ऐसी कठिन। नहीं, यह पाप मुझसे न होगा। यदि राजा मुझे कुलटा समझते हैं तो समझें, उन्हें मुझ पर सन्देह है तो हो। मुझसे यह पाप न होगा। राजाको ऐसा सन्देह क्यों हुआ? क्या केवल थालोंके बदल जानेसे? नहीं, अवश्य कोई और बात है। आज हरदौल उन्हें जंगलमें मिल गया था। राजाने उसकी कमरमें तलवार देखी होगी। क्या आश्चर्य है, हरदौलसे कोई अपमान भी हो गया हो। मेरा अपराध क्या है? मुझ पर इतना बड़ा दोष क्यों लगाया जाता है? केवल थालोंके बदल जानेसे। हे ईश्वर! मैं किससे अपना दुःख कहूँ? तू ही मेरा साक्षी है। जो चाहे सो हो, पर मुझसे यह पाप न होगा।

रानीने फिर सोचा—राजा, क्या तुम्हारा हृदय ऐसा ओछा और नीच है? तुम मुझसे हरदौलकी जान लेनेको कहते हो? यदि तुमसे उसका अधिकार और मान नहीं देखा जाता तो क्यों साफ साफ ऐसा नहीं कहते? क्यों मरदोंकी लड़ाई नहीं लड़ते? क्यों स्वयं अपने हाथसे उसका सिर नहीं काटते? मुझसे वह काम करनेको कहते हो। तुम खूब जानते हो मैं नहीं कर सकती। यदि मुझसे तुम्हारा जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जानकी जंजाल हो गई हूँ तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो। मैं बेखटके चली जाऊँगी। पर ईश्वरके लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलंक न लगने दो। पर मैं जीवित ही क्यों रहूँ? मेर लिए अब जीवनमें कोई सुख नहीं है। अब मेरा मरना ही अच्छा है। मैं स्वयं प्राण दे दूँगी, पर यह महापाप मुझसे न होगा।

विचारोंने फिर पलटा खाया। तुमको यह पाप करना ही होगा। इससे बड़ा पाप शायद आजतक संसार में न हुआ हो। पर यह पाप तुमको करना होगा। तुम्हारे पातिव्रत पर सन्देह किया जा रहा है और तुम्हें इस सन्देहको मिटाना होगा। यदि तुम्हारी जान जोखिममें होती, तो कुछ हर्ज न था। अपनी जान देकर हरदौलको बचा लेती। पर इस समय तुम्हारे पातिव्रत पर आँच आ रही है। इस लिए तुम्हें यह पाप करना ही होगा और पाप करनेके बाद हँसना और प्रसन्न रहना होगा। यदि तुम्हारा चित्त तनिक भी विलचित हुआ, यदि तुम्हारा मुखड़ा जरा भी मध्यम हुआ, तो इतना बड़ा पाप करने पर भी तुम सन्देह मिटानेमें सफल न होगी। तुम्हारे जी पर चाहे जो बीते, पर तुम्हें यह पाप करना ही पड़ेगा। परंतु कैसे होगा? क्या मैं हरदौलका सिर उतारूँगी? यह सोचकर रानीके शरीरमें कँपकँपी आ गई। नहीं; मेरा हाथ उस पर कभी नहीं उठ सकता। प्यारे हरदौल! मैं तुम्हें विष नहीं खिला सकती। मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए आनन्दसे विषका बीड़ा खा लोगे। हाँ, मैं जानती हूँ, तुम नाहीं न करोगे। पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता; एक बार नहीं, हजार बार नहीं हो सकता।

[४]

हरदौलको इन बातोंकी कुछ भी खबर न थी। आधीरातको एक दासी रोती हुई उसके पास गई और उसने उससे सब समाचार अक्षर अक्षर कह सुनाया। वह दासी पानदान लेकर रानीके पीछे पीछे सेजमहलके दरवाजेतक गई थी और सब बातें सुनकर आई थी। हरदौल राजाका ढंग देखकर पहले ही ताड़ गया था कि राजाके मनमें कोई न कोई काँटा अवश्य खटक रहा है। दासीकी बातोंने उसके

सन्देहको और भी पक्का कर दिया। उसने दासीसे कड़ी मनाही कर दी कि सावधान ! किसी दूसरेके कानोंमें इन बातोंकी भनक न पड़े और वह स्वयं मरनेके लिए तैयार हो गया।

हरदौल बुन्देलोंकी वीरताका सूरज था। उसके भौंहोंके तनिक इशारेसे तीन लाख बुन्देले मरने और मारनेके लिए इकट्ठे हो सकते थे। औरछा उस पर न्यौछावर था। यदि जुझारसिंह खुले मैदान उसका सामना करते, तो अवश्य मुँहकी खाते। क्योंकि हरदौल भी बुन्देला था और बुन्देला अपने शत्रुके साथ किसी प्रकारकी मुहँदेखी नहीं करते, मरना मारना उनके जीवनका एक अच्छा दिल-बहलाव है। उन्हें सदा इसकी लालसा रहती है कि कोई हमें चुनौती दे, कोई हमें छेड़े ! उन्हें सदा खूनकी प्यास रहती है और वह प्यास कभी नहीं बुझती। परंतु उस समय एक स्त्रीको उसके खूनकी जरूरत थी और उसका साहस उसके कानोंमें कहता था कि एक निर्दोष और सती अबलाके लिए अपने शरीरका खून देनेमें मुँह न मोड़ो। यदि भैयाको यह सन्देह होता कि " मैं उनके खूनका प्यासा हूँ और उन्हें मारकर राज पर अधिकार करना चाहता हूँ " तो कुछ हर्ज न था। राज्यके लिए क़तल और खून, दग़ा और फ़रेब सब उचित समझा गया है। परंतु उनके इस सन्देहका निपटेरा मेरे मरनेके सिवा और किसी तरह नहीं हो सकता। इस समय मेरा धर्म है कि, अपना प्राण देकर उनके इस सन्देहको दूर कर दूँ। उनके मनमें यह दुखानेवाला सन्देह उत्पन्न करके यदि मैं जीता ही रहूँ और अपने मनकी पवित्रता जनाऊँ तो मेरी ढिटाई है। नहीं, इस भले काममें अधिक आगा पीछा करना अच्छा नहीं। मैं खुशीसे विषका बीड़ा खाऊँगा। इससे बढ़कर शूरवीरकी मृत्यु और क्या हो सकती है ? क्रोधमें

आकर, मारूके मन बढ़ानेवाले शब्द सुनकर रणक्षेत्रमें अपनी जानको तुच्छ समझना इतना कठिन नहीं है। आज सच्चा वीर हरदौल अपने हृदयके बड़प्पन पर अपनी सारी वीरता और साहस न्यौछावर करनेको उद्यत है।

दूसरे दिन हरदौलने खूब तड़के स्नान किया। बदन पर अस्त्रशस्त्र साजे मुसकुराता हुआ राजाके पास गया। राजा भी सोकर तुरंत ही उठे थे, उनकी अलसाई हुई आँखें हरदौलकी मूर्तिकी ओर लगी हुई थीं। सामने सङ्गमर्मरकी चौकी पर विष मिला पान सोनेकी तश्तरीमें रक्खा हुआ था। राजा कभी पानकी ओर ताकते और कभी मूर्तिकी ओर, शायद उनके विचारने इस विषकी गाँठ और उस मूर्तिमें एक सम्बन्ध पैदा कर दिया था। उस समय जो हरदौल एकाएक घरमें पहुँचे तो राजा चौंक पड़े। उन्होंने सँभाल कर पूछा, "इस समय कहाँ चले?"

हरदौलका मुखड़ा प्रफुल्लित था। वह हँसकर बोला,—"कल आप यहाँ पधारे हैं, इसी खुशीमें मैं आज शिकार खेलने जाता हूँ। आपको ईश्वरने अजीत बनाया है, मुझे अपने हाथसे विजयका बीड़ा दीजिये।"

यह कहकर हरदौलने चौकीपरसे पानदान उठा लिया और उसे राजाके सामने रखकर बीड़ा लेनेके लिए हाथ बढ़ाया। हरदौलका खिला हुआ मुखड़ा देखकर राजाकी ईर्षाकी आग और भी भड़क उठी। दुष्ट! मेरे घाव पर नमक छिड़कने आया है। मेरे मान और विश्वासको मिट्टीमें मिलाने पर भी तेरा जी न भरा? मुझसे विजयका बीड़ा माँगता है? हाँ, यह विजयका बीड़ा है। पर तेरी विजयका नहीं, मेरी विजयका।

इतना मनमें कहकर जुझारसिंहने बीड़ेको हाथमें उठाया। वे एक क्षणतक कुछ सोचते रहे फिर मुसकुराकर हरदौलको बीड़ा दे दिया। हरदौलने सिर झुकाकर बीड़ा लिया, उसे माथे पर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करुणाके साथ चारों ओर देखा और फिर बीड़ेको मुँहमें रख लिया। एक सच्चे राजपूतने अपना पुरुषत्व दिखा दिया। विष हालाहल था, कंठके नीच उतरते ही हरदौलके मुखड़े पर मुर्दनी छा गई और आँखें बुझ गईं। उसने एक ठण्डी साँस ली, दोनों हाथ जोड़कर जुझारसिंहको प्रणाम किया और जमीन पर बैठ गया। उसके ललाट पर पसीनेकी ठण्डी ठण्डी बूँदें दिखाई दे रही थीं और साँस तेजीसे चलने लगी थी। पर चेहरे पर प्रसन्नता और सन्तोषकी झलक दिखाई देती थी।

जुझारसिंह अपनी जगहसे जरा भी न हिले। उनके चेहरे पर ईर्षासे भरी हुई मुसकुराहट छाई हुई थी, पर आँखोंमें आँसू भर आये थे। उजेले और अँधेरेका मिलाप हो गया था।

रानी सारन्धा।

[१]

अँधेरी रातके सन्नाटेमें धसान नदी चटानोंसे टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर घुमुर करती हुई चक्कियाँ। नदीके दाहिने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है जिसको जंगली वृक्षोंने घेर रक्खा है। टीलेके पूर्वकी ओर एक छोटासा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव दोनों एक बुंदेला सरदारके कीर्तिचिह्न हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं, बुन्देल-

खण्डमें कितने ही राज्योंका उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुंदेला राजा उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाका, ऐसा न था जो इन दुर्व्यवस्थाओंसे पीड़ित न हो, मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रुकी विजय-पताका न लहराई और इस गाँवमें किसी विद्रोहका भी पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह जमाना ही ऐसा था जब मनुष्य मात्रको अपने बाहुबल और पराक्रमहीका भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनायें पैर जमाये खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान् राजा अपने निर्बल भाइयोंका गला घोटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंहके पास सवारों और पियादोंका एक छोटासा, मगर सजीव, दल था। इसीसे वह अपने कुल और मर्य्यादाकी रक्षा किया करता था। उसे कभी चैनसे बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवीसे हुआ,मगर अनिरुद्ध विहारके दिन और विलासकी रातें पहाड़ोंमें काटता था और शीतला उसकी जानकी खैर मनानेमें। वह कितनी बार पतिसे अनुरोध कर चुकी थी, कितनी बार उसके पैरों पर गिर कर रोई थी, कि तुम मेरी आँखोसे दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले चलो, मुझे तुम्हारे साथ वनवास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यारसे कहा, जिद्दसे कहा, विनय की, मगर अनिरुद्ध बुंदेला था। शीतला अपने किसी हथियारसे उसे परास्त न कर सकी।

[२]

अँधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, मगर तारे आकाशमें जागते थे। शीतला देवी पलङ्ग पर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी ननद सारंधा फर्श पर बैठी हुई मधुर स्वरसे गाती थी:—

बिन रघुवीर कटत नहिं रैन।

शीतलाने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूँ।

शीतला—मेरी आँखोंसे तो नींद लोप हो गई।

सारन्धा—किसीको ढूँढ़ने गई होगी।

इतनेमें द्वार खुला और एक गठे हुए बदनके रूपवान् पुरुषने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाईसे उतर कर जमीन पर बैठ गई।

सारन्धाने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं?

अनिरुद्ध—नदी पैर कर आया हूँ!

सारन्धा—हथियार क्या हुए!

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथके आदमी!

अनिरुद्ध—सबने वीरगति पाई।

शीतलाने दबी ज़बानसे कहा—"ईश्वरने ही कुशल किया—" मगर सारन्धाके तीवरों पर बल पड़ गये और मुखमण्डल गर्वसे सतेज हो गया। बोली—"भैया! तुमने कुलकी मर्य्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।"

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँहसे यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेदसे विकल हो गया। वह वीराग्नि जिसे क्षण भरके लिए अनुरागने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उल्टे पाँव लौटा और यह कहकर बाहर चला गया कि "सारन्धा! तुमने मुझे सदैवके लिए सचेत कर दिया। यह बातें मुझे कभी न भूलेंगी।"

अँधेरी रात थी। आकाश मण्डलमें तारोंका प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किलेसे बाहर निकला। पलभरमें नदीके उस पार जा पहुँचा, और फिर अन्धकारमें लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे पीछे किलेकी दीवारों तक आई, मगर जब अनिरुद्ध छलाँग मारकर बाहर कूद पड़ा तो वह विरहिणी एक चट्टान पर बैठकर रोने लगी।

इतनेमें सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। शीतलाने नागिनकी तरह बल खाकर कहा—मर्य्यादा इतनी प्यारी है!

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता तो हृदयमें छिपा लेतीं।

सारन्धा—न— छातीमें छुरी चुभा देती।

शीतलाने ऐंठ कर कहा—डोलीमें छिपाती फिरोगी—मेरी बात गिरहमें बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटनाके तीन महीने पीछे अनिरुद्ध महरौनाको विजित करके लौटा और साल भर पीछे सारन्धाका विवाह ओरछाके राजा चम्पतरायसे हो गया। मगर उस दिनकी बातें दोनों महिलाओंके हृदय-स्थलमें काँटेकी तरह खटकती रहीं।

[३]

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुँदेला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्वको मानती थी। गद्दी पर बैठते ही उसने मुग़ल बादशाहोंको कर देना बन्द कर दिया और अपने बाहुबलसे राज्यविस्तार करने लगा। मुसलमानोंकी सेनायें बार बार उस पर हमले करतीं थीं पर हारकर लौट जाती थीं।

यही समय था जब अनिरुद्धने सारन्धाका चम्पतरायसे विवाह कर दिया। सारन्धाने मुँहमाँगी मुराद पाई। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुँदेला जातिका कुलतिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजाके रनिवासमें पाँच रानियाँ थीं, मगर उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी जो हृदयमें मेरी पूजा करती है सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनायें हुईं कि चम्पतरायको मुगल बादशाहका आश्रित होना पड़ा। वह अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंहको सौंपकर आप देहलीको चला गया। यह शाहजहाँके शासनकालका अन्तिम भाग था। शाहज़ादा दारा शिकोह राजकीय कार्य्योंको सँभालते थे। युवराजकी आँखोंमें शील था और चित्तमें उदारता। उन्होंने चम्पतरायकी वीरताकी कथायें सुनी थीं, इसलिए उसका बहुत आदर सम्मान किया, और कालपीकी बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतरायको आये दिनकी लड़ाई झगड़ेसे निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोगविलासका प्राबल्य हुआ। रात दिन आमोदप्रमोदकी चर्चा रहने लगी। राजा विलासमें डूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रीझीं। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती। वह इन रहस्योंसे दूर दूर रहती, ये नृत्य और गानकी सभायें उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतरायने सारन्धासे कहा—सारन ! तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज़ हो ?

सारन्धाकी आँखोंमें जल भर आया। बोली—स्वामीजी ! आप क्यों ऐसा विचार करते हैं। जहाँ आप प्रसन्न हैं वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जबसे यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुखकमल पर कभी मनोहारिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथोंसे मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी?

सारन्धा—प्राणनाथ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं जिसका उत्तर मेर पास नहीं है! यथार्थमें इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर एक बोझासा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्दमें मग्न थे। इसलिए उनके विचारमें सारन्धाको असन्तुष्ट रहनेका कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भौंहें सिकोड़ कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहनेका कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछामें कौनसा सुख था जो यहाँ नहीं है? सारन्धाका चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे?

चम्पतराय—नहीं, शौक़से कहो।

सारन्धा—ओरछामें मैं एक राजाकी रानी थी। यहाँ मैं एक जागीरदारकी चेरी हूँ। ओरछामें मैं वह थी जो अवधमें कौशल्या थीं। परन्तु यहाँ मैं बादशाहके एक सेवककी स्त्री हूँ। जिस बादशाहके सामने आज आप आदरसे शीश झुकाते हैं वह कल आपके नामसे काँपता था। रानीसे चेरी होकर भी प्रसन्नचित्त होना मेरे वशमें नहीं है। आपने यह पद और ये विलासकी सामग्रियाँ बड़े महँगे दामोंमें मोल ली हैं।

चम्पतरायके नेत्रोंसे एक पर्दा सा हट गया। वे अब तक सारन्धाकी आत्मिक उच्चताको न जानते थे। जैसे बे-माँबापका बालक

माँकी चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछाकी यादसे चम्पतरायकी आँखें सजल हो गईं। उन्होंने आदरयुक्त अनुरागके साथ सारन्धाको हृदयसे लगा लिया।

आजसे उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्तीकी फिक्र हुई जहाँसे धन और कीर्तिकी अभिलाषायें खींच लाई थीं।

[४]

माँ अपने खोये हुए बालकको पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतरायके आनेसे बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछाके भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं, और फिर सारन्धाके कमलनेत्रोंमें जातीय अभिमानका आभास दिखलाई देने लगा।

यहाँ रहते कई महीने बीत गये। इसी बीचमें शाहजहाँ बीमार पड़ा। शाहज़ादाओंमें पहलेसे ईर्षाकी अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्रामकी तैयारियाँ होने लगीं। शाहज़ादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने अपने दल सजा कर दक्खिनसे चले। वर्षाके दिन थे, नदी नाले उमड़े हुए थे, पर्वत और वन हरी हरी घाससे लहरा रहे थे। उर्बरा भूमि रंगबिरंगके रूप भर कर अपने सौन्दर्य्यको दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगोंसे भरे हुए क़दम बढ़ाते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुरके निकट चम्बलके तट पर आ पहुँचे। परंतु यहाँ उन्होंने बादशाही सेनाको अपने शुभागमनके निमित्त तैयार पाया।

शाहज़ादे अब बड़ी चिन्तामें पड़े। सामने अगम्य नदी लहरें मार रही थीं, लोभसे भी अधिक विस्तारवाली। घाट पर लोहेकी दीवार खड़ी थी, किसी योगीके त्यागके सदृश सुदृढ़। विवश होकर चम्प-

तरायके पास सँदेसा भेजा कि खुदाके लिए आकर हमारी डूबती हुई नावको पार लगाइये।

राजाने भवनमें जाकर सारन्धासे पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दारा शिकोहसे वैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है परन्तु हाथ फैलानेकी मर्य्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोच कर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ! मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओंका रक्त पानीके समान बहाना पड़ेगा। परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे, और चम्बलकी लहरोंको लाल कर देंगे। विश्वास रखिए कि जब तक नदीकी धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरोंकी कीर्ति गान करती रहेगी। जबतक बुन्देलोंका एक भी नाम-लेवा रहेगा, यह रक्तबिन्दु उसके माथे पर केशरका तिलक बन कर चमकेगा।

वायुमण्डलमें मेघराजकी सेनायें उमड़ रही थीं। ओरछेके किलेसे बुन्देलोंकी एक काली घटा उठी और वेगके साथ चम्बलकी तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीररससे झूम रहा था। सारन्धाने दोनों राजकुमारोंको गलेसे लगा लिए और राजाको पानका बीड़ा देकर कहा—बुन्देलोंकी लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक एक अंग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलोंकी यह सेना देखकर शाहज़ादे फूले न समाये। राजा वहाँकी अंगुल अंगुल भूमिसे परिचित थे। उन्होंने बुन्देलोंको तो एक आड़में छिपा दिया और शाहज़ादोंकी फ़ौजको सजा कर नदीके किनारे

किनारे पच्छिमकी ओर चले। दारा शिकोहको भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाटसे नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाटपरसे मोर्चे हटा लिये। घाटमें बैठे हुए बुन्देले इसी ताकमें थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरत ही नदीमें घोड़े डाल दिये। चम्पतरायने शाहज़ादा दाराशिकोहको भुलावा देकर अपनी फ़ौज घुमा दी और वह बुन्देलोंके पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चालमें सात घण्टोंका विलम्ब हुआ; परन्तु जाकर देखा तो सात सौ बुन्देला योद्धाओंकी लाशें फड़क रही थीं।

राजाको देखते ही बुन्देलोंकी हिम्मत बँध गई। शाहज़ादोंकी सेनाने भी 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनिके साथ धावा किया। बादशाही सेनामें हलचल पड़ गई। उनकी पंक्तियाँ छिन्न भिन्न हो गईं। हाथों-हाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गई। रणभूमि रुधिरसे लाल होगई और आकाश अँधेरा हो गया। घमसानकी मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहज़ादोंको दबाये आती थी। अकस्मात् पच्छिमसे फिर बुँदेलोंकी एक लहर उठी और इस वेगसे बादशाही सेनाकी पुश्त पर टकराई कि उसके क़दम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथसे निकल गया। लोगोंको कौतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँसे आई। सरल स्वभावके लोगोंकी धारणा थी कि यह फ़तहके फ़िरिश्ते हैं। शाहज़ादोंकी मददके लिए आये हैं। परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये तो सारन्धाने घोड़ेसे उतर कर उनके पद पर शीश झुका दिया। राजाको असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी।

समरभूमिका दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुए वीरोंके दल थे वहाँ अब बेजान लाशें फड़क रही थीं। मनुष्यने अपने स्वार्थके लिए आदिसे ही भाइयोंकी हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूटी। पहले मर्द मर्दोंसे लड़ते थे, अब वे मुर्दोंसे लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रमका चित्र था, यह नीचता और दुर्बलताकी ग्लानिप्रद तसवीर थी। उस समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशुसे भी बढ़ गया था।

इस नोच खसोटमें लोगोंको बादशाही सेनाके सेनापति वलीबहादुर ख़ाँकी लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुमसे मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजाको घोड़ोंका शौक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराक़ी जातिका अति सुन्दर घोड़ा था। एक एक अंग साँचेमें ढला हुआ, सिंहकी सी छाती, चीतेकी सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामिभक्ति देखकर लोगोंको बड़ा कौतूहल हुआ। राजाने हुक्म दिया—"खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ ले, यह मेरे अस्तबलकी शोभा बढ़ायेगा। जो इसे मेरे पास लावेगा—उसे धनसे निहाल कर दूँगा।"

योद्धागण चारों ओरसे लपके; परन्तु किसीको साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुमकारता था, कोई फन्देसे फँसानेकी फ़िक्रमें थाँ। पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियोंका एक मेला सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमेंसे निकली और निर्भय होकर घोड़ेके पास चली गई। उसकी आँखोंमें प्रेमका प्रकाश था, छलका नहीं। घोड़ेने सिर झुका दिया। रानीने उसकी गर्दन पर हाथ रक्खा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़ेने उसके अञ्चलमें मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़ कर खेमेकी ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानों सदैवसे उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़ेने सारन्धासे भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चलकर इस राजपरिवारके निमित्त रत्नजटित मृग प्रतीत हुआ।

[५]

संसार एक रणक्षेत्र है। इस मैदानमें उसी सेनापतिको विजयलाभ होता है जो अवसरको पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साहसे आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साहसे आपत्तिके समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्रका निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यशके फूलोंकी वर्षा करता है।

पर इस मैदानमें कभी कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते हैं जो अवसर पर क़दम बढ़ाना जानते हैं, लेकिन संकटमें पीछे हटना नहीं जानते। यह रणधीर पुरुष विजयको नीतिके भेंट कर देता है। वह अपनी सेनाका नाम मिटा देगा, किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गया है, वहाँसे क़दम पीछे न हटायेगा। उनमें कोई विरला ही संसारक्षेत्रमें विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्राय: उसकी हार विजयसे भी गौरवात्मक होती है। अगर वह अनुभवशील सेनापति राष्ट्रोंकी नीव डालता है, तो यह आन पर जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही, राष्ट्रके भावोंको उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरवको अंकित कर देता है। उसे इस कार्यक्षेत्रमें चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभामें उसका नाम ज़बान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वरसे उसके कीर्तिगौरवको प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा इन्हीं 'आन पर जान देनेवालों' में थी।

शाहज़ादा मुहीउद्दीन चम्बलके किनारेसे आगरेकी ओर चला तो सौभाग्य उसके सिर पर मोर्छल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजयदेवीने उसके लिए सिंहासन सजा दिया।

औरंगज़ेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारोंके अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्यपद लौटा दिये और राजा चम्पतरायको उसके बहुमूल्य कृत्योंके उपलक्षमें बारह हजारी मन्सब प्रदान किया। ओरछासे बनारस और बनारससे यमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुँदेला राजा फिर राज्यसेवक बना, वह फिर सुखविलासमें डूबा, और रानी सारन्धा फिर पराधीनताके शोकसे घुलने लगी।

वली बहादुरख़ाँ बड़ा वाक्यचतुर मनुष्य था। उसकी मृदुलताने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीरका विश्वासपात्र बना दिया। उस पर राज-सभामें सम्मानकी दृष्टि पड़ने लगी।

ख़ाँसाहबके मनमें अपने घोड़ेके हाथसे निकल जानेका बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैरको गया था। वह ख़ाँ साहबके महलकी तरफ़ जा निकला। वली बहादुर ऐसे ही अवसरकी ताकमें था। उसने तुरत अपने सेवकोंको इशारा किया। राजकुमार अकेला क्या करता! पाँव पाँव घर आया, और उसने सारन्धासे सब समाचार बयान किया। रानीका चेहरा तमतमा गया। बोली—मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा हाथसे गया, शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा। क्या तेरे शरीरमें बुँदेलोंका रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुँदेला बालकसे उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।

यह कहकर उसने अपने पचीस योद्धाओंको तैयार होनेकी आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किये और योद्धाओंके साथ वली बहादुरख़ाँके निवासस्थान पर जा पहुँची। ख़ाँसाहब उसी घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गये थे। सारन्धा दरबारकी तरफ़ चली, और एक क्षणमें किसी वेगवती नदीके सदृश बादशाही दरबारके सामने जा पहुँची।

यह कैफ़ियत देखते ही दरबारमें हलचल मच गई। अधिकारीवर्ग इधर उधरसे आकर जमा हो गये। आलमगीर भी सहनमें निकले आये। लोग अपनी अपनी तलवारें सँभालने लगे और चारों तरफ़ शोर मच गया। कितने ही नेत्रोंने इसी दरबारमें अमरसिंहकी तलवारकी चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धाने ऊच्च स्वरसे कहा—ख़ाँसाहब! बड़ी लज्जाकी बात है कि आपने वह वरिता जो चम्बलके तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालकके सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते?

वली बहादुरख़ाँकी आँखोंसे अग्निज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाज़से बोले—किसी ग़ैरको क्या मजाज़ है कि मेरी चीज़ अपने काममें लाये?

रानी—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रणभूमिमें पाया है और उस पर मेरा अधिकार है। क्या रणनीतिकी इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते?

ख़ाँसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदलेमें सारा अस्तबल आपको नजर है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

ख़ाँसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ, परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारोंसे होगा। बुँदेला योद्धाओंने तलवारें सौंत लीं और निकट था कि दरबारकी भूमि रक्तसे प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीरने बीचमें आकर कहा—रानी

साहबा ! आप सिपाहियोंको रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा। परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व त्यागने पर तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी ?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज़ नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी ?

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़ेके लिए ?

रानी—नहीं—उस पदार्थके लिए जो संसारमें सबसे अधिक मूल्य-वान् है।

बादशाह— वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानीने एक घोड़ेके लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्यपद और राजसम्मान सब हाथसे खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्यके लिए कांटे बोये। इस घड़ीसे अन्त दशा तक चम्प-तरायको शान्ति न मिली।

[६]

राजा चम्पतरायने फिर ओरछेके क़िलेमें पदार्पण किया। उन्हें मन्सब और जागीरके हाथसे निकल जानेका अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने अपने मुँहसे शिकायतका एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धाके स्वभावको भली भाँति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्मगौरव पर कुठारका काम करती। कुछ दिन यहाँ शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए। लेकिन बादशाह सारन्धाकी कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्योंही भाइयोंकी ओरसे निश्चिन्त

हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतरायका गर्व चूर्ण करनेके निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुँदेला बादशाहका सूबेदार था। वह चम्पतरायका बचपनका मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतरायको परास्त करनेका बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुँदेला सरदार राजासे विमुख होकर बादशाही सूबेदारसे आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयोंकी तलवारें रक्तसे लाल हुईं। यद्यपि इस समरमें राजाको विजय प्राप्त हुई, लेकिन उनकी शक्ति सदाके लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुँदेला राजा जो चम्पतरायके बाहुबल थे, बादशाहके कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियोंमें कुछ तो काम आये कुछ दग़ा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियोंने भी आँखें चुरा लीं। परन्तु इन कठिनाइयोंमें भी चम्पतरायने हिम्मत नहीं हारी। धीरजको न छोड़ा। उसने ओरछा छोड़ दिया, और तीन वर्ष तक बुँदेलखण्डके सघन पर्वतों पर छिपे फिरते रहे। बादशाही सेनायें शिकारी जानवरोंकी भाँति सारे देशमें मँड़रा रही थीं। आये दिन राजाका किसी न किसीसे सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उनके साथ रहती, और उनका साहस बढ़ाया करती। बड़ी बड़ी आपत्तियोंमें भी जब कि धैर्य्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती—आत्मरक्षाका धर्म्म उसे संभाले रहता था। तीन सालके बाद अन्तमें बादशाहके सूबेदारोंने आलमगीरको सूचना दी कि इस शेरका शिकार आपके सिवाय और किसीसे न होगा। उत्तर आया कि सेनाको हटा लो, और घेरा उठा लो। राजाने समझा, संकटसे निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

[७]

तीन सप्ताहसे बादशाही सेनाने ओरछा घेर रक्खा है। जिस तरह कठोर वचन हृदयको छेद डालते हैं, उसी तरह तोपोंके गोलोंने दीवा-

रोंको छेद डाला है। क़िलेमें २० हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधेसे अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दोंकी संख्या दिनों दिन न्यून होती जाती है। आनेजानेके मार्ग चारों तरफ़से वन्द हैं। हवाका भी गुज़र नहीं। रसदका सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों और बालकोंको जीवित रखनेके लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य्यनारायणकी ओर हाथ उठा उठा कर शत्रुको कोसती हैं। बालकवृन्द मारे क्रोधके दीवारोंकी आड़से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किलसे दीवारके उस पार जाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयम् ज्वरसे पीड़ित हैं। उन्होंने कई दिनसे चारपाई नहीं छोड़ी। उन्हें देखकर लोगोंको कुछ ढारस होता था, लेकिन उनकी बीमारीसे सारे किलेमें नैराश्य छाया हुआ है।

राजाने सारन्धासे कहा—आज शत्रु ज़रूर किलेमें घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आँखोंसे वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकोंकी है। गेहूँके साथ यह घुन भी पिस जायेंगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँसे निकल जायें तो कैसा?

राजा—इन अनाथोंको छोड़ कर?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देनेहीमें कुशल है। हम न होंगे तो इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, यह लोग मुझसे न छोड़े जायेंगे। जिन मर्दोंने अपनी जान हमारी सेवामें अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चोंको मैं यों कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हमं उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा—उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं। मैं उनकी रक्षामें अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेनाकी खुशामद करूँगा। कारावासकी कठिनाइयाँ सहूँगा, किन्तु इस संकटमें उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धाने लज्जित होकर सिर झुका लिया और सोचने लगी, निस्संदेह अपने प्रिय साथियोंको आगकी आँचमें छोड़कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थांध क्यों हो गई हूँ? लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियोंके साथ कोई अन्याय न किया जायगा तब तो आपको चलनेमें कोई बाधा न होगी।

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाहके सेनापतिका प्रतिज्ञापत्र।

राजा—हाँ तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचारसागरमें डूबी। बादशाहके सेनापतिसे क्यों कर यह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर वहाँ जायेगा! और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे। उन्हें तो अपनी विजयकी पूरी आशा है। मेर यहाँ ऐसा नीतिकुशल, वाक्पटु, चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्य्यको सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मनमें निश्चय करके रानीने छत्रसालको बुलाया। यह उसके चारों पुत्रोंमें सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसालने आकर रानीको प्रणाम किया

तो उसके कमलनेत्र सजल हो गये और हृदयसे दीर्घ निश्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता मेरे लिए क्या आज्ञा है।

रानी—आज लड़ाईका क्या ढंग है?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी—बुँदेलोंकी लाज अब ईश्वरके हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रातको छापा मारेंगे।

रानीने संक्षेपसे अपना प्रस्ताव छत्रसालके सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसको सौंपा जाये?

छत्रसाल—मुझको।

" तुम इसे पूरा कर दिखाओगे?"

" हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है।"

" अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूरा करे।"

छत्रसाल जब चला तो रानीने उसे हृदयसे लगा लिया और तब आकाशकी ओर दोनों हाथ उठा कर कहा—दयानिधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुँदेलोंकी आनके भेट कर दिया। अब इस आनको निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो।

[८]

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थालमें पूजाकी सामग्री लिये मन्दिरको चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँखों तले अँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिरके द्वार पर पहुँची थी, कि उसके थालमें बाहरसे आकर एक तीर गिरा। तीरकी नोक पर एक कागज़का पुर्जा लपटा हुआ था। सारन्धाने थाल मन्दिरके चबूतरे प

रख दिया, और पुर्जेको खोलकर देखा, तो आनन्दसे चेहरा खिल गया। लेकिन यह आनन्द क्षणभरका मेहमान था। हाय! इस पुर्जेके लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथसे खो दिया है। कागज़के टुकड़ेको इतने महँगे दामों किसने लिया होगा?

मंदिरसे लौटकर सारन्धा राजा चम्पतरायके पास गई और बोली—"प्राणनाथ! आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिये" राजाने चौंक कर पूछा—"तुमने अपना वादा पूरा कर लिया?" रानीने वह प्रतिज्ञापत्र राजाको दे दिया। चम्पतरायने उसे गौरवसे देखा फिर बोले "अब मैं चलूँगा और ईश्वरने चाहा तो एक बेर फिर शत्रुओंकी ख़बर लूँगा। लेकिन सारन! सच बताओ इस पत्रके लिए क्या देना पड़ा?"

रानीने कुण्ठित स्वरसे कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजाको बाण सा लगा। पूछा—कौन? अंगदराय?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परोंको फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलँगसे उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्यकी सारी कामनायें उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत

हुआ तो बोले—"सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया तो बुँदेला वंशका नाश हो जायगा।"

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतरायको पालकीमें बैठाये किलेके गुप्त मार्गसे निकली जाती थी। आजसे बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुःखमय रात्रि थी। तब सारन्धाने शीतलादेवीको कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवीने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धाने उसका जो उत्तर दिया था वह भी पूरा होकर रहेगा?

[८]

मध्याह्नकाल था। सूर्य्यनारायण सिर पर आकर अग्निकी वर्षा कर रहे थे। शरीरको झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु वन और पर्वतोंमें आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानों अग्निदेवकी समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगनमण्डल इस भयसे काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतरायको लिये, पच्छिमकी तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था, और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भयके क्षेत्रसे बाहर निकल आये। राजा पालकीमें अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीनेमें शराबोर थे। पालकीके पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे प्यासके मारे सबका बुरा हाल था। तालू सूखा जाता था। किसी वृक्षकी छाँह और कुएँकी तलाशमें आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धाने पीछेकी तरफ फिर कर देखा तो उसे सवारोंका एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार

कि शायद मेर राजकुमार अपने आदमियोंको लिए हमारी सहायताको आ रहे हैं। नैराश्यमें भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनिट तक वह इसी आशा और भयकी अवस्थामें रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियोंके वस्त्र साफ़ नज़र आने लगे। रानीने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणवत् काँपने लगा। यह बादशाही सेनाके लोग थे।

सारन्धाने कहारोंसे कहा— डोली रोक लो। बुँदेला सिपाहियोंने भी तलवारें खींच लीं। राजाकी अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकटका ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीरमें वीरात्मा चमक उठी। वे पालकीका पर्दा उठा कर बाहर निकल आये। धनुषबान हाथमें ले लिया। किन्तु वह धनुष जो उनके हाथमें इन्द्रका वज्र बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिरमें चक्कर आया, पैर थर्राये, और वे धरतीपर गिर पड़े। भावी अमंगलकी सूचना मिल गई। उस पंखरहित पक्षीके सदृश जो साँपको अपनी तरफ आते देखकर ऊपरको उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर सँभलकर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धाने उन्हें सँभालकर बैठाया, और रोकर बोलनेकी चेष्टा की। परन्तु मुँहसे केवल इतना निकला—“प्राणनाथ !” इसके आगे उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका। आनपर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियोंकी भाँति शक्तिहीन हो गई। लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्रीजातिकी शोभा है।

चम्पतराय बोले—“सारन! देखो हमारा एक और वीर ज़मीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्तिसे यावज्जीवन डरता रहा उसने इस अन्तिम समय आ घेरा। मेरी आँखोंके सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीरमें हाथ

लगायेंगे, और मैं जगहसे हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु, तू कब आयेगी! यह कहते कहते उन्हें एक विचार आया। तलवारकी तरफ़ हाथ बढ़ाया, मगर हाथोंमें दम न था। तब सारन्धासे बोले—"प्रिये! तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।"

इतना सुनते ही सारन्धाके मुरझाये हुए मुख पर लाली दौड़ गई। आँसू सूख गये। इस आशाने कि मैं अब भी पतिके कुछ काम आ सकती हूँ, उसके हृदयमें बलका संचार कर दिया। वह राजाकी ओर विश्वासोत्पादकभावसे देखकर बोली—ईश्वरने चाहा तो मरते दमतक निबाहूँगी।

रानीने समझा राजा मुझे प्राण दे देनेका संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दमतक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धाने तलवारको निकालकर अपने वक्ष स्थल पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूँ तो यह मस्तक आपके पदकमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इस लिए शत्रुओंके हाथमें छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियाँ पहने हुए दिल्लीकी गलियोंमें निन्दाका पात्र बनूँ?

रानीने जिज्ञासादृष्टिसे राजाको देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिये।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी?

रानी—सिरके बल करूँगी।

राजा—देखो—तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(काँपकर) आपके कहनेकी देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छातीमें चुभा दो।

रानीके हृदय पर वज्रपात सा हो गया। बोली—जीवननाथ!—इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी—आँखोंमें नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़िया पहननेके लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—हाय मुझसे यह कैसे होगा!

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजाने झुँझलाकर कहा—इसी जीवट पर आन निभानेका गर्व था?

बादशाहके सिपाही राजाकी तरफ़ लपके। राजाने नैराश्यपूर्णभावसे रानीकी ओर देखा। रानी क्षणभर अनिश्चित रूपसे खड़ी रही। लेकिन संकटमें हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान् हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजाको पकड़ लें कि सारन्धाने दामिनीकी भाँति लपक कर अपनी तलवार राजाके हृदयमें चुभा दी। प्रेमकी नाव प्रेमके सागरमें डूब गई। राजाके हृदयसे रुधिरकी धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शान्ति छाई हुई थी।

कैसा करुण दृश्य है। वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदयसे आलिङ्गित होकर उसने यौवन सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओंका केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमानका पोषक था, उसी हृदयको आज सारन्धाकी तलवार छेद रही है। किस स्त्रीकी तलवारसे ऐसा काम हुआ है!

आह! आत्माभिमानका कैसा विषादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़के इतिहासमें भी आत्मगौरवकी ऐसी घटनायें नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धाका यह साहस और धैर्य्य देखकर दंग रह गये। सरदारने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है; हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो उसे ब सरो चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धाने कहा—अगर हमारे पुत्रोंमेंसे कोई जीवित हो तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदयमें चुभा ली। जब वह अचेत हो कर धरती पर गिरी तो उसका सिर राजा चम्पतरायकी छाती पर था।

मर्यादाकी वेदी।

——:o:——

यह वह समय है जब चित्तौड़में मृदुभाषिणी मीरा प्यासी आत्माओंको ईश्वर-प्रेमके प्याले पिलाती थी। रणछोड़जीके मन्दिरमें जब भक्तिसे विह्वल होकर वह अपने मधुर स्वरोंमें अपने पीयूष-पूरित पदोंको गाती, तो श्रोतागण प्रेमानुरागसे उन्मत्त हो जाते। प्रतिदिन यह स्वर्गीय आनन्द उठानेके लिए सारे चित्तौड़के लोग ऐसे उत्सुक होकर दौड़ते, जैसे दिनभरकी प्यासी गायें दूसरे किसी सरोवरको देखकर उसकी ओर दौड़ती हैं। इस प्रेमसुधा सागरसे केवल चित्तौड़-वासियोंहीकी तृप्ति न होती थी, बल्कि समस्त राजपूतानाकी मरुभूमी प्लावित हो जाती थी।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि झालावारके रावसाहब और मन्दार राज्यके कुमार दोनों ही लाव लश्करके साथ चित्तौड़ आये। रावसाहबके साथ राजकुमारी प्रभा भी थी, जिसके रूप और गुणकी दूर दूर तक

चर्चा थी। यहीं रणछोड़जीके मन्दिरमें दोनोंकी आँखें मिलीं। प्रेमने वाण चलाया।

राजकुमार सारे दिन उदासीन भावसे शहरकी गलियोंमें घूमा करता। राजकुमारी विरहसे व्यथित अपने महलके झरोखोंसे झाँका करती। दोनों व्याकुल होकर सन्ध्यासमय मन्दिरमें आते और यहाँ चन्द्रको देखकर कुमुदिनी खिल जाती।

प्रेमप्रवीणा मीराने कई बार इन दोनों प्रेमियोंको सतृष्ण नेत्रोंसे परस्पर देखते हुए पाकर उनके मनके भावोंको ताड़ लिया। एक दिन कीर्त्तनके पश्चात् जब झालावारके रावसाहब चलने लगे तो उसने मन्दारके राजकुमारको बुलाकर उनके सामने खड़ा कर दिया और कहा—"रावसाहब! मैं प्रभाके लिए यह वर लाई हूँ! आप इसे स्वीकार कीजिये।"

प्रभा लज्जासे गड़ सी गई। राजकुमारके गुण शील पर रावसाहब पहलेहीसे मोहित हो रहे थे। उन्होंने तुरंत उसे छातीसे लगा लिया। उसी अवसर पर चित्तौड़के राणा भोजराज भी मन्दिरमें आये। उन्होंने प्रभाका मुखचन्द्र देखा। उनकी छाती पर साँप लोटने लगा!

[२]

झालावारमें बड़ी धूम थी। राजकुमारी प्रभाका आज विवाह होगा। मन्दारसे बारात आयेगी। मेहमानोंके सेवासम्मानकी तय्यारियाँ हो रही थीं। दूकानें सजी हुई थीं। नौबतख़ाने आमोदालापसे गूँजते थे। सड़कों पर सुगन्धि छिड़की जाती थी। अट्टालिकायें पुष्पलताओंसे शोभायमान थीं। पर जिसके लिए ये सब तय्यारियाँ हो रही थीं, वह अपनी बाटिकाके एक वृक्षके नीचे उदास बैठी हुई रो रही थी।

रनिवासमें डोमिनियाँ आनन्दोत्सवके गीत गा रही थीं। कहीं सुन्दरियोंके हावभाव थे, कहीं आभूषणोंकी चमकदमक, कहीं हास्यपरिहास्यकी बहार। नाइन बात बातपर तेज़ होती थी। मालिन गर्वसे फूली न समाती थी। धोबिन आँखें दिखाती थी। कुम्हारिन मटकेके सदृश फूली हुई थी। मण्डपके नीचे पुरोहितजी बात बात पर सुवर्णमुद्राओंके लिए ठुनकते थे। रानी सिरके बाल खोले भूखी प्यासी चारों ओर दौड़ती थी। सबकी बौछारें सहती थी और अपने भाग्यको सराहती थी। दिल खोलकर हीरे जवाहिर लुटा रही थी। आज प्रभाका विवाह है, बड़े भाग्यसे ऐसी बातें सुननेमें आती हैं। सबके सब अपनी अपनी धुनमें मस्त हैं। किसीको प्रभाकी फ़िक्र नहीं है, जो वृक्षके नीचे अकेली बैठी रो रही है।

एक रमणीने आकर नाइनसे कहा—बहुत बढ़ बढ़ कर बातें न कर, कुछ राजकुमारीका भी ध्यान है? चल उनके बाल गूँथ।

नाइनने दाँतों तले जीभ दबाई। दोनों प्रभाको ढूँढ़ती हुई बागमें पहुँचीं। प्रभाने उन्हें देखते ही आँसू पोंछ डाले। नाइन मोतियोंसे माँग भरने लगी और प्रभा सिर नीचा किये आँखोंसे मोती बरसाने लगी।

रमणीने सजलनेत्र होकर कहा—बहिन, दिल इतना छोटा मत करो। मुँह माँगी मुराद पाकर इतनी उदास क्यों होती हो?

प्रभाने सहेलीकी ओर देखकर कहा—बहिन न जाने क्यों दिल बैठा जाता है। सहेलीने छेड़ कर कहा—पिया मिलनकी बेकली है।

प्रभा उदासीन भावसे बोली—कोई मेर मनमें बैठा कह रहा है कि अब उनसे मुलाकात न होगी।

सहेली उसके केश सँवार कर बोली—जैसे उषाकालसे पहले कुछ अँधेरा हो जाता है उसी प्रकार मिलापके पहले प्रेमियोंका मन अधीर हो जाता है। प्रभा बोली—नहीं बहिन, यह बात नहीं। मुझे शकुन अच्छे नहीं दिखाई देते। आज दिनभर मेरी आँख फड़कती रही। रातको मैंने बुरे स्वप्न देखे हैं। मुझे शंका होती है कि आज अवश्य कोई न कोई विघ्न पड़नेवाला है। तुम राणा भोजराजको जानती हो न?

सन्ध्या हो गई। आकाश पर तारोंके दीपक जले। झालावारमें बूढ़े जवान सभी लोग बारातकी अगुवानीके लिए तैयार हुए। मरदोंने पागें सँवारीं, शस्त्र सजे। युवतियाँ शृंगार कर गाती-बजाती रनिवासकी ओर चलीं। हज़ारों स्त्रियाँ छत पर बैठी बारातकी राह देख रही थीं।

अचानक शोर मचा कि बारात आ गई। लोग सँभल बैठे, नगाड़ो पर चोटें पड़ने लगीं! सलामियाँ दगने लगीं। जवानोंने घोड़ोंको एड़ लगाई। एक क्षणमें सवारोंकी एक सेना राजभवनके सामने आकर खड़ी हो गई। लोगोंको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि यह मन्दारकी बारात नहीं थी, बल्कि राणा भोजराजकी सेना थी।

झालावारवाले अभी विस्मित खड़े ही थे; कुछ निश्चय न कर सके थे कि क्या करना चाहिए। इतनेमें चित्तौड़वालोंने राजभवनको घेर लिया। तब झालावारी भी सचेत हुए! सँभलकर तलवारें खींच लीं और आक्रमणकारियोंपर टूट पड़े! राणा महलमें घुस गया रनिवासमें भगदर मच गई।

प्रभा सोलहों शृंगार किये सहेलियोंके साथ बैठी थी। यह हलचल देखकर घबराई। इतनेमें रावसाहब हाँफते हुए आये और बोले—बेटी प्रभा! राणा भोजराजने हमारे महलको घेर लिया है! तुम चटपट

ऊपर चली जाओ और द्वारको बन्द कर लो। अगर हम क्षत्रिय हैं तो एक चित्तौड़ी भी यहाँसे जीता न जायेगा।

रावसाहब बात भी पूरी न करने पाये थे कि राणा कई वीरोंके साथ आ पहुँचे और बोले—चित्तौड़वाले तो सिर कटानेके लिए आये ही हैं। पर यदि वे राजपूत हैं तो राजकुमारी प्रभाको लेकर ही जायँगे। वृद्ध रावसाहबकी आँखोंसे ज्वाला निकलने लगी। वे तलवार खींच-कर राणा पर झपटे। उनने वार बचा लिया और प्रभासे कहा—राज-कुमारी, हमारे साथ चलोगी?

प्रभा सिर झुकाये राणाके सामने आकर बोली—हाँ चलूँगी।

रावसाहबको कई आदमियोंने पकड़ लिया था। वे तड़प कर बोले —प्रभा तू राजपूतकी कन्या है?

प्रभाकी आँखें सजल हो गईं। बोली—राणा भी तो राजपूतोंके कुलतिलक हैं। रावसाहबने आवेशमें आकर कहा—निर्लज्जा!

कटारके नीचे पड़ा हुआ बलिदानका पशु जैसी दीन दृष्टिसे देखता है उसी भाँति प्रभाने रावसाहबकी ओर देखकर कहा—जिस झाला-वारकी गोदमें पली हूँ, क्या उसे रँगवा दूँ?

रावसाहबने क्रोधसे काँपकर कहा—क्षत्रियोंको रक्त इतना प्यारा नहीं होता। मर्यादा पर प्राण देना उनका धर्म है।

तब प्रभाकी आँखें लाल हो गईं। चेहरा तमतमाने लगा। बोली—राजपूतकन्या अपने सतीत्वकी रक्षा आप कर सकती है। इसके लिए रुधिरप्रवाहकी आवश्यकता नहीं।

पलभरमें राणाने प्रभाको गोदमें उठा लिया। वे बिजलीकी भाँति झपट कर बाहर निकले। उन्होंने उसे घोड़े पर बिठाया, आप सवार हो गये और घोड़ेको उड़ा दिया। अन्य चित्तौड़ियोंने भी घोड़ोंकी

बागें मोड़ दीं। उनके दो सौ जवान भूमि पर पड़े तड़प रहे थे, पर किसीने तलवार न चलाई थी।

रातको दस वजे मन्दारवाले भी पहुँचे। मगर यह शोकसमाचार पाते ही लौट गये। मन्दार-कुमार निराशासे अचेत हो गया। जैसे रातको नदीका किनारा सुनसान हो जाता है उसी तरह सारी रात झालावारमें सन्नाटा छाया रहा।

[३]

चित्तौड़के रंगमहलमें प्रभा उदास बैठी सामनेके सुन्दर पौदोंकी पत्तियाँ गिन रही थी। सन्ध्याका समय था। रंगबिरंगके पक्षी वृक्षों पर बैठे कलरव कर रहे थे। इतनेमें राणाने कमरेमें प्रवेश किया। प्रभा उठ कर खड़ी हो गई।

राणा बोले—प्रभा, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मैं बलपूर्वक तुम्हें मातापिताकी गोदसे छीन लाया। पर यदि मैं तुमसे कहूँ कि यह सब तुम्हारे प्रेमसे विवश होकर मैंने किया तो तुम मनमें हँसोगी और कहोगी कि यह निराले, अनूठे ढंगकी प्रीति है। पर वास्तवमें यही बात है। जबसे मैंने रणछोड़जीके मन्दिरमें तुमको देखा, तबसे एक क्षण भी ऐसा नहीं बीता कि मैं तुम्हारी सुधिमें विकल न रहा होऊँ। तुम्हें अपनानेका अन्य कोई उपाय होता तो मैं कदापि इस पाशविक ढंगसे काम न लेता। मैंने रावसाहबकी सेवामें बारम्बार सँदेशे भेजे, पर उन्होंने हमेशा मेरी उपेक्षा की। अन्तमें जब तुम्हारे विवाहकी अवधि आ गई और मैंने देखा कि एक ही दिनमें जब तुम दूसरेकी प्रेमपात्री हो जाओगी, और तुम्हारा ध्यान करना भी मेरी आत्माको दूषित करेगा, तो लाचार होकर मुझे यह अनीति करनी पड़ी। मैं मानता हूँ कि यह

सर्वथा मेरी स्वार्थान्धता है। मैंने अपने प्रेमके सामने तुम्हारे मनोगत भावोंको कुछ न समझा। पर प्रेम स्वयं एक बढ़ी हुई स्वार्थपरता है, जब मनुष्यको अपने प्रियतमके सिवाय और कुछ नहीं सूझता। मुझे पूरा विश्वास था कि मैं अपने विनीत भाव और प्रेमसे तुमको अपना लूँगा। प्रभा, प्याससे मरता हुआ मनुष्य यदि किसी गढ़ेमें मुँह डाल दे तो वह दण्डका भागी नहीं है। मैं प्रेमका प्यासा हूँ। मीरा मेरी सहधर्मिणी है। उसका हृदय प्रेमका अगाध सागर है। उसका एक चुल्लू भी मुझे उन्मत्त करनेके लिए काफ़ी था। पर जिस हृदयमें ईश्वरका बास हो वहाँ मेर लिए स्थान कहाँ ? तुम शायद कहोगी कि यदि तुम्हारे सिर पर प्रेमका भूत सवार था तो क्या सारे राजपूतानेमें स्त्रियाँ न थीं। निस्सन्देह राजपूतानेमें सुन्दरताका अभाव नहीं है और न चित्तौड़ाधिपतिकी ओरसे विवाहकी बातचीत किसीके अनादरका कारण हो सकती है। पर इसका जवाब तुम आप ही हो। इसका दोष तुम्हारे ही ऊपर है! राजस्थानमें एक ही चित्तौड़ है! एक ही राणा!! और एक ही प्रभा!! सम्भव है मेर भाग्यमें प्रेमानन्द भोगना न लिखा हो। यह मैं अपने कर्मलेखको मिटानेका थोड़ासा प्रयत्न कर रहा हूँ। परन्तु भाग्यके अधीन बैठे रहना पुरुषोंका काम नहीं है। मुझे इसमें सफलता होगी या नहीं, इसका फ़ैसला तुम्हारे हाथ है।

प्रभाकी आँखें ज़मीनकी तरफ़ थीं और मन फुदकनेवाली चिड़ियाँकी भाँति इधर उधर उड़ता फिरता था। वह झालावारको मार काटसे बचानेके लिए राणाके साथ आई थी। मगर राणाके प्रति उसके हृदयमें क्रोधकी तरंगें उठ रहती थीं। उसने सोचा था कि वे यहाँ आयेंगे तो उन्हे राजपूतकुलकलंक, अन्यायी, दुराचारी, दुरात्मा, कायर कह कर उनका गर्व चूर चूर कर दूँगी। उसको विश्वास था कि यह

अपमान उनसे न सहा जायगा और वे मुझे बलात् अपने क़ाबूमें लाना चाहेंगे। इस अन्तिम समयके लिए उसने अपने हृदयको खूब मज़बूत और अपनी कटारको खूब तेज़ कर रक्खा था। उसने निश्चय कर लिया था कि इसका एक वार उन पर होगा, दूसरा अपने कलेजे पर, और इस प्रकार यह पापकाण्ड समाप्त हो जायँगा। लेकिन राणाकी नम्रता, उनकी करुणात्मक विवेचना, और उनके विनीतभावने प्रभाको शान्त कर दिया। आग पानीसे बुझ जाती है। राणा कुछ देर वहाँ बैठे रहे फिर उठ कर चले गये।

[४]

प्रभाको चित्तौड़में रहते दो महीने गुज़र चुके हैं। राणा उसके पास फिर न आये। इस बीचमें उनके विचारोंमें बहुत कुछ अन्तर हो गया है। झालावार पर आक्रमण होनेके पहले मीराबाईको इसकी बिल्कुल ख़बर न थी। राणाने इस प्रस्तावको गुप्त रक्खा था। किन्तु अब मीराबाई प्रायः उन्हें इस दुराग्रह पर लज्जित किया करती है। और धीरे धीरे राणाको भी विश्वास होने लगा है कि प्रभा इस तरह क़ाबूमें नहीं आ सकती! उन्होंने उसके सुखविलासकी सामग्री एकत्र करनेमें काई कसर नहीं रख छोड़ी थी। लेकिन प्रभा उनकी तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखती। राणा प्रभाकी लौंडियोंसे नित्यका समाचार पूछा करते हैं और उन्हें रोज़ वही निराशापूर्ण वृत्तान्त सुनाई देता है। मुरझाई हुई कली किसी भाँति नहीं खिलती। अतएव उनको कभी कभी अपने इस दुस्साहस पर पश्चात्ताप होता है। वे पछताते हैं कि मैंने व्यर्थ ही यह अन्याय किया। लेकिन फिर प्रभाका अनुपम सौन्दर्य्य नेत्रोंके सामने आ जाता है और वह अपने मनको इस विचारसे समझा लेते हैं कि एक सगर्वा सुन्दरीका प्रेम इतना जल्दी परिवर्त्तित नहीं हो

सकता। निस्सन्देह मेरा मृदु व्यवहार कभी न कभी अपना प्रभाव दिखलायगा।

प्रभा सारे दिन अकेली बैठी बैठी उकताती और झुँझलाती है। उसके विनोदके निमित्त कई गानेवाली स्त्रियाँ नियुक्त थीं। किन्तु राग-रंगसे उसे अरुचि हो गई थी। वह प्रतिक्षण चिन्ताओंमें डूबी रहती थी।

राणाके नम्र भाषणका प्रभाव अब मिट चुका था और उनकी अमानुषिक वृत्ति अब फिर अपने यथार्थ रूपमें दिखाई देने लगी थी। वाक्यचतुरता शान्तिकारक नहीं होती। वह केवल निरुत्तर कर देती है। प्रभाको अब अपने अवाक् हो जाने पर आश्चर्य होता है। उसे राणाकी बातोंके उत्तर भी सूझने लगे हैं। वह कभी कभी उनसे लड़-कर अपनी क़िस्मतका फ़ैसला करनेके लिए विकल हो जाती है।

मगर अब यह वादविवाद किस कामका? वह सोचती है कि मैं रावसाहबकी कन्या हूँ, पर संसारकी दृष्टिमें राणाकी रानी हो चुकी। अब यदि मैं इस कैदसे छूट भी जाऊँ तो मेरे लिए कहाँ ठिकाना है। मैं किसे मुँह दिखाऊँगी। इससे केवल मेरे वंशका ही नहीं वरन् समस्त राजपूत जातिका नाम डूब जायगा। मन्दारकुमार मेरे सच्चे प्रेमी हैं। मगर क्या वे मुझे अङ्गीकार करेंगे? और यदि वे निन्दाकी पर-वाह न करके मुझे ग्रहण भी कर लें तो उनका मस्तक सदाके लिए नीचा हो जायगा, और कभी न कभी उनका मन मेरी तरफ़से फिर जायगा। वे मुझे अपने कुलका कलंक समझने लगेंगे।

या यहाँसे किसी तरह भाग जाऊँ। लेकिन भागकर जाऊँ कहाँ? बापके घर? वहाँ अब मेरी पैठ नहीं। मन्दारकुमारके पास? इसमें उनका अपमान है और मेरा भी। तो क्या भिखारिणी बन जाऊँ? इसमें भी जग-हँसाई होगी और न जाने प्रबल भावी किस मार्ग पर

ले जाय। एक अबला स्त्रीके लिए सुन्दरता प्राणघातक यन्त्रसे कम नहीं। ईश्वर, वह दिन न आये कि मैं क्षत्रिय जातिका कलङ्क बनूँ। क्षत्रिय जातिने मर्यादाके लिए पानीकी तरह रक्त बहाया है! उनकी हजारों देवियाँ परपुरुषके मुँह देखनेके भयसे सूखी लकड़ीके समान जल मरी हैं। ईश्वर, वह घड़ी न आये कि मेरे कारण किसी राजपूतका सिर लज्जासे नीचा हो। नहीं, मैं इसी कैदमें मर जाऊँगी। राणाके अन्याय सहूँगी, जलूँगी, मरूँगी, पर इसी घरमें। विवाह जिससे होना था हो चुका। हृदयमें उसीकी उपासना करूँगी, पर कण्ठके बाहर उसका नाम न निकालूँगी।

एक दिन झुँझलाकर उसने राणाको बुला भेजा। वे आये। उनका चेहरा उतरा था। वे कुछ चिन्तित से थे। प्रभा कुछ कहना चाहती थी, पर उनकी सूरत देखकर उसे उन पर दया आगई। उनने उसे बात करनेका अवसर न देकर स्वयं कहना शुरू किया।

"प्रभा, तुमने मुझे आज बुलाया है। यह मेरा सौभाग्य है। तुमने मेरी सुधि तो ली। मगर यह मत समझो कि मैं मृदुवाणी सुननेकी आशा लेकर आया हूँ। नहीं, मैं जानता हूँ जिसके लिए तुमने मुझे बुलाया है। यह लो तुम्हारा अपराधी तुम्हारे सामने खड़ा है। उसे जो दण्ड चाहो दो। मुझे अबतक आनेका साहस न हुआ। इसका कारण यही दण्डभय था। तुम क्षत्राणी हो और क्षत्राणियाँ क्षमा करना नहीं जानतीं। झालावारमें जब तुम मेरे साथ आने पर स्वयं उद्यत हो गईं तो मैंने उसी क्षण तुम्हारे जौहर परख लिये। मुझे मालूम हो गया कि तुम्हारा हृदय बल और विश्वाससे भरा हुआ है और उसे काबूमें लाना सहज नहीं। तुम नहीं जानतीं कि यह एक मास मैंने किस तरहसे काटा है। तड़प तड़प कर रहा हूँ। पर जिस

तरह शिकारी बफरी हुई सिंहनीके सम्मुख जानेसे डरता है वही दशा मेरी थी। मैं कई बार आया, पर यहाँ तुमको उदास तिउरियाँ चढ़ाये बैठे देखा। मुझे अन्दर पैर रखनेका साहस न हुआ। मगर आज मैं बिना बुलाया मेहमान नहीं हूँ। तुमने मुझे बुलाया है और तुम्हें अपने मेहमानका स्वागत करना चाहिए। हृदयसे न सही, जहाँ अग्नि प्रज्वलित हो वहाँ ठण्डक कहाँ? बातोंहीसे सही। अपने भावोंको दबा कर ही सही। मेहमानका स्वागत करो। संसारमें शत्रुका आदर मित्रोंसे भी अधिक किया जाता है।

"प्रभा! एक क्षणके लिए क्रोधको शान्त करो और मेरे अपराधों पर विचार करो। तुम मेरे ऊपर यही दोषारोपण कर सकती हो कि मैं तुम्हें मातापिताकी गोदसे छीन लाया। तुम जानती हो, कृष्ण भगवान रुक्मिणीको हर लाये थे। राजपूतोंमें यह कोई नई बात नहीं है। तुम कहोगी, इससे झालावारवालोंका अपमान हुआ, पर ऐसा कहना कदापि ठीक नहीं। झालावारवालोंने वही किया जो मर्दोंका धर्म था। उनका पुरुषार्थ देखकर हम चकित हो गये। यदि वे कृतकार्य नहीं हुए तो यह उनका दोष नहीं है। वीरोंकी सदैव जीत नहीं होती। हम इस लिए सफल हुए कि हमारी संख्या अधिक थी और इस कामके लिए तैयार होकर गये थे। वे निश्शंक थे, इस कारण उनकी हार हुई। यदि हम वहाँसे शीघ्र ही प्राण बचाकर भाग न आते तो हमारी गति वही होती जो रावसाहबने कही थी। एक भी चित्तौड़ी न बचता। लेकिन ईश्वरके लिए यह मत सोचो कि मैं अपने अपराधके दूषणको मिटाना चाहता हूँ। नहीं, मुझसे अपराध हुआ और मैं हृदयसे उस पर लज्जित हूँ। पर अब तो जो कुछ होना था हो चुका। अब इस बिगड़े हुए खेलको मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। यदि मुझे तुम्हारे हृद-

यमें कोई स्थान मिले तो मैं उसे स्वर्ग समझूँगा। डूबतेहुएको तिनकेका सहारा भी बहुत है। क्या यह सम्भव है ?"

प्रभा बोली—नहीं।

राणा—झालावार जाना चाहती हो ?

प्रभा—नहीं।

राणा—मन्दारके राजकुमारके पास भेज दूँ ?

प्रभा—कदापि नहीं।

राणा—लेकिन मुझसे यह तुम्हारा कुढ़ना देखा नहीं जाता।

प्रभा—आप इस कष्टसे शीघ्र ही मुक्त हो जायँगे।

राणाने भयभीत दृष्टिसे देखकर कहा "जैसी तुम्हारी इच्छा।" और वे वहाँसे उठकर चले गये।

[५]

दस बजे रातका समय था। रणछोड़जीके मन्दिरमें कीर्तन समाप्त हो चुका था और वैष्णव साधु बैठे हुए प्रसाद पा रहे थे। मीरा स्वयं अपने हाथोंसे थाल ला ला कर उनके आगे रखती थी। साधुओं और अभ्यागतोंके आदरसत्कारमें उस देवीको आत्मिक आनन्द प्राप्त होता था। साधुगण जिस प्रेमसे भोजन करते थे उससे यह शंका होती थी कि स्वादपूर्ण वस्तुओंमें कहीं भक्ति-भजनसे भी अधिक सुख तो नहीं है। यह सिद्ध हो चुका है कि ईश्वरकी दी हुई वस्तुओंका सदुपयोग ही ईश्वरोपासनाकी मुख्य रीति है। इसलिए ये महात्मा लोग उपासनाके ऐसे अच्छे अवसरको क्यों खोते ? वे कभी पेट पर हाथ फेरते और कभी आसन बदलते थे। मुँहसे 'नहीं' कहना तो वे घोर पापके समान समझते थे। यह भी मानी हुई बात है कि जैसी वस्तु-

योंका हम सेवन करते हैं वैसी ही आत्मा भी बनती है। इसलिए ये महात्मागण घी और खोयेसे उदरको खूब भर रहे थे।

पर इन्हींमें एक महात्मा ऐसे भी थे जो आँखें बन्द किये ध्यानमें मग्न थे। थालकी ओर ताकते भी न थे। इनका नाम प्रेमानन्द था। ये आज ही आये थे। इनके चेहरे पर कान्ति झलकती थी। अन्य साधुवर्ग खाकर उठ गये, परन्तु उन्होंने थालको छुआ भी नहीं।

मीराने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, आपने प्रसादको छूया भी नहीं। दासीसे कोई अपराध तो नहीं हुआ?—

साधु—नहीं, इच्छा नहीं थी।

मीरा—पर मेरी विनय आपको माननी पड़ेगी।

साधु—मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूँगा, तो तुमको भी मेरी एक बात माननी होगी।

मीरा—कहिये क्या आज्ञा है।

साधु—माननी पड़ेगी।

मीरा—मानूँगी।

साधु—वचन देती हो?

मीरा—हाँ वचन देती हूँ, आप प्रसाद पायें।

मीराबाईने समझा था कि साधु कोई मन्दिर बनवाने या कोई यज्ञ पूर्ण करा देनेकी याचना करेगा। ऐसी बातें नित्यप्रति हुआ करती थीं और मीराका सर्वस्व साधुसेवा पर अर्पित था। परन्तु उस साधुने ऐसी कोई याचना न की। वह मीराके कानोंके पास मुँह ले जाकर बोला—आज दो घण्टेके बाद राजभवनका चोर दरवाजा खोल देना।

मीरा विस्मित होकर बोली—आप कौन हैं?

साधु—मन्दारका राजकुमार।

मीराने राजकुमारको सिरसे पाँव तक देखा। नेत्रोंमें आदर की जगह घृणा थी। कहा—राजपूत यों छल नहीं करते

राजकुमार—यह नियम उस अवस्थाके लिए है जब दोनों पक्ष समानशक्ति रखते हों।

मीरा—ऐसा नहीं हो सकता।

राजकुमार—आपने वचन दिया है उसे पालन करना होगा।

मीरा—महाराजकी आज्ञाके सामने मेरे वचनका कोई महत्त्व नहीं।

राजकुमार—मैं यह कुछ नहीं जानता। यदि आपको अपने वचनकी कुछ भी मर्यादा है तो उसे पूरा कीजिये।

मीरा—(सोचकर) महलमें जाकर क्या करोगे ?

राजकुमार —नई रानीसे दो दो बातें।

मीरा चिन्तामें विलीन हो गई। एक तरफ़ राणाकी कड़ी आज्ञा थी और दूसरी तरफ़ अपना वचन और उसके पालन करनेका परिणाम। कितनी ही पौराणिक घटनायें उसके सामने आ रही थीं। दशरथने वचन पालनके लिए अपने प्रिय पुत्रको वनवास दे दिया। मैं वचन दे चुकी हूँ। उसे पूरा करना मेरा परम धर्म है। लेकिन पतिकी आज्ञाको कैसे तोड़ूँ। यदि उनकी आज्ञाके विरुद्ध करती हूँ तो लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। क्यों न उनसे स्पष्ट कह दूँ। क्या वे मेरी यह प्रार्थना स्वीकार न करेंगे ? मैंने आज तक उनसे कुछ नहीं माँगा। आज उनसे यह दान माँगूँगी। क्या वे मेरे वचनकी मर्यादाकी रक्षा न करेंगे ? उनका हृदय कितना विशाल है। निस्सन्देह वे मुझ पर वचन तोड़नेका दोष न लगने देंगे।

इस तरह मनमें निश्चय करके वह बोली—कब खोल दूँ ?

राजकुमारने उछल कर कहा—आधी रातको।

मीरा—मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलूँगी।

राजकुमार—क्यों ?

मीरा—तुमने मेरे साथ छल किया है। मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है।

राजकुमारने लज्जित होकर कहा—अच्छा तो आप द्वार पर खड़ी रहियेगा।

मीरा—यदि फिर कोई दगा की तो जानसे हाथ धोना पड़ेगा।

राजकुमार—मैं सब कुछ सहनेके लिए तय्यार हूँ।

[३]

मीरा यहाँसे राणाकी सेवामें पहुँची। वे उसका बहुत आदर करते थे। वे खड़े हो गये। इस समय मीराका जाना एक असाधारण बात थी! उन्होंने पूछा—बाई जी, क्या आज्ञा है ?

मीरा—आपसे भिक्षा माँगने आई हूँ। निराश न कीजियेगा। मैंने आज तक आपसे कोई विनती नहीं की, पर आज एक ब्रह्मफाँसमें फँस गई हूँ। इसमेंसे मुझे आप ही निकाल सकते हैं। मंदारके राजकुमारको तो आप जानते हैं ?

राणा—हाँ, अच्छी तरह।

मीरा—आज उसने मुझे बड़ा धोखा दिया। एक वैष्णव महात्माका रूप धारणकर रणछोड़जीके मन्दिरमें आया और उसने छलकरके मुझे वचन देने पर वाध्य किया। मेरा साहस नहीं होता कि उसकी कपट-विनय आपसे कहूँ।

राणा—प्रभासे मिलादेनेको तो नहीं कहा ?

मीरा—जी हाँ, उसका अभिप्राय वही है। लेकिन सवाल यह था कि मैं आधीरातको राजमहलका गुप्तद्वार खोल दूँ। मैंने उसे बहुत

समझाया, बहुत धमकाया, पर किसी भाँति न माना। निदान विवश होकर मैंने वादा कर लिया। तब उसने प्रसाद पाया। अब मेरे वचनकी लाज आपके हाथ है। आप चाहे उसे पूरा करके मेरा मान रक्खें, चाहे उसे तोड़कर मेरा मान तोड़ दें। आप मेरे ऊपर जो कृपादृष्टि रखते हैं, उसीके भरोसे मैंने वचन दिया है। अब मुझे इस फन्देसे उबारना आपहीका काम है।

राणा कुछ देर सोचकर बोले—तुमने वचन दिया है उसका पालन करना मेरा कर्तव्य है। तुम देवी हो, तुम्हारे वचन नहीं टल सकते। द्वार खोल दो। लेकिन यह उचित नहीं है कि वह प्रभासे अकेले मुलाकात करे। तुम स्वयं उसके साथ जाना। मेरी खातिरसे इतना कष्ट उठाना। मुझे भय है कि वह उसकी जान लेनेका इरादा करके न आया हो। ईर्षामें मनुष्य अन्धा हो जाता है। बाईजी, मैं अपने हृदयकी बात आपसे कहता हूँ। मुझे प्रभाको हर लानेका अत्यन्त शोक है। मैंने समझा था कि यहाँ रहते रहते वह हिल मिल जायगी किन्तु यह अनुमान ग़लत निकला। मुझे भय है कि यदि उसे कुछ दिन यहाँ और रहना पड़ा तो वह जीती न बचेगी। मुझ पर एक अबलाकी हत्याका अपराध लग जायगा। मैंने उससे झालावार जानेके लिए कहा, पर वह राज़ी न हुई। आज आप उन दोनोंकी बातें सुनें। अगर वह मन्दारकुमारके साथ जाने पर राज़ी हो, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दूँगा। मुझसे उसका कुढ़ना नहीं देखा जाता। ईश्वर इस सुन्दरीका हृदय मेरी ओर फेर देता तो मेरा जीवन सफल हो जाता। किन्तु जब यह सुख भाग्यमें लिखा ही नहीं है तो क्या वश है। मैंने तुमसे ये बातें कहीं, इसके लिए मुझे क्षमा करना। तुम्हारे पवित्र हृदयमें ऐसे विषयोंके लिए स्थान कहाँ?

मीराने आकाशकी ओर सङ्कोचसे देखकर कहा—तो मुझे आज्ञा है। मैं चोरद्वार खोल दूँ?

राणा—तुम इस घरकी स्वामिनी हो! मुझसे पूछनेकी ज़रूरत नहीं।

मीराबाई राणाको प्रणाम करके चली गई।

[७]

आधी रात बीत चुकी थी। प्रभा चुपचाप बैठी दीपककी ओर देख रही थी और सोचती थी, इसके घुलनेसे प्रकाश होता है; यह बत्ती अगर जलती है तो दूसरोंको लाभ पहुँचाती है। मेरे जलनेसे किसीको क्या लाभ? मैं क्यों घुलूँ? मेरे जीनेकी क्या ज़रूरत है?

उसने फिर खिड़कीसे सिर निकालकर आकाशकी तरफ़ देखा। काले पट पर उज्ज्वल तारे जगमगा रहे थे। प्रभाने सोचा, मेरे अन्धकार-मय भाग्यमें ये दीप्तमान तारे कहाँ हैं? मेरे लिए जीवनके सुख कहाँ हैं? क्या रोनेके लिए जीऊँ? ऐसे जीनेसे क्या लाभ?

और जीनेमें उपहास भी तो है। मेरे मनका हाल कौन जानता है? संसार मेरी निन्दा करता होगा। झालावारकी स्त्रियाँ मेरी मृत्युके शुभसमाचार सुननेकी प्रतीक्षा कर रही होंगी। मेरी प्रिय माता लज्जासे आँखें न उठा सकती होंगी। लेकिन जिस समय उनको मेर मरनेकी खबर मिलेगी गर्वसे उनका मस्तक ऊँचा हो जायगा। यह बेहयाईका जीना है। ऐसे जीनेसे मरना कहीं उत्तम है।

प्रभाने तकियेके नीचेसे एक चमकती हुई कटार निकाली। उसके हाथ काँप रहे थे। उसने कटारकी तरफ़ आँखें जमाईं। हृदयको उसके अभिवादनके लिए मज़बूत किया। हाथ उठाया किन्तु न उठा; आत्मा दृढ़ न थी। आँखें झपक गईं। सिरमें चक्कर आ गया। कटार हाथसे छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ी।

प्रभा क्रुद्ध होकर सोचने लगी—क्या मैं वास्तवमें निर्लज्ज हूँ ? मैं राजपूतनी होकर मरनेसे डरती हूँ ? मान मर्य्यादा खोकर बेहया लोग ही जिया करते हैं। वह कौनसी आकांक्षा है जिसने मेरी आत्माको इतना निर्बल वना रक्खा है ? क्या राणाकी मीठी मिठी बातें ? राणा मेरे शत्रु हैं। उन्होंने मुझे पशु समझ रक्खा है जिसे फँसानेके पश्चात् हम पिंजरेमें बन्द करके हिलाते हैं। उन्होंने मेरे मनको अपनी वाक्य-मधुरताका क्रीड़ास्थल समझ लिया है। वे इस तरह घुमा घुमा कर बातें करते हैं और मेरी तरफ़से उक्तियाँ निकालकर उनका ऐसा उत्तर देते हैं कि मेरी ज़बान ही बन्द हो जाती है। हाय! निर्दयीने मेरा जीवन नष्ट कर दिया और मुझे यों खेलाता है। क्या इसी लिए जीऊँ कि उसके कपट भावोंका खिलौना बनूँ ?

फिर वह कौन सी अभिलाषा है। क्या राजकुमारका प्रेम ? उसकी तो अब कल्पना ही मेरे लिए घोर पाप है। मैं अब उस देवताके योग्य नहीं हूँ। प्रियतम! बहुत दिन हुए मैंने तुमको हृदयसे निकाल दिया। तुम भी मुझे दिलसे निकाल डालो। मृत्युके सिवाय अब कहीं मेरा ठिकाना नहीं है। शङ्कर! मेरी निर्बल आत्माको शक्ति प्रदान करो। मुझे कर्तव्यपालनका बल दो।

प्रभाने फिर कटार निकाली। इच्छा दृढ़ थी। हाथ उठा और निकट था कि कटार उसके शोकातुर हृदयमें चुभ जाय कि इतनेमें किसीके पाँवकी आहट सुनाई दी। उसने चौंककर सहमी हुई दृष्टिसे देखा। मन्दारकुमार धीरे धीरे पैर दबाता हुआ कमरेमें दाखिल हुआ।

[९]

प्रभा उसे देखते ही चौंक पड़ी। उसने कटारको छिपा लिया। राजकुमारको देखकर उसे आनन्दकी जगह रोमाञ्चकारी भय उत्पन्न

हुआ। यदि किसीको जरा भी सन्देह हो गया तो इनका प्राण बचना कठिन है। इनको तुरत यहाँसे निकल जाना चाहिए। यदि इन्हें बातें करनेका अवसर दूँ तो विलम्ब होगा और फिर ये अवश्य ही फँस जायँगे। राणा इन्हें कदापि न छोड़ेंगे। ये विचार वायु और बिजलीकी व्यग्रताके साथ उसके मस्तिष्कमें दौड़े। वह तीव्र स्वरसे बोली—भीतर मत आओ!

राजकुमारने पूछा—मुझे पहचाना नहीं?

प्रभा—खूब पहिचान लिया, किन्तु यह बातें करनेका समय नहीं है। राणा तुम्हारी घातमें हैं। अभी यहाँसे चले जाओ।

राजकुमारने एक पग और आगे बढ़ाया और निर्भीकतासे कहा—प्रभा, तुम मुझसे निठुरता करती हो।

प्रभाने धमकाकर कहा—तुम यहाँ ठहरोगे तो मैं शोर मचा दूँगी।

राजकुमारने उदण्डतासे उत्तर दिया, इसका मुझे भय नहीं। मैं अपनी जान अथेली पर रखकर आया हूँ। आज दोनोंमेंसे एकका अन्त हो जायगा। या तो राणा रहेंगे या मैं रहूँगा। तुम मेरे साथ चलोगी?

प्रभाने दृढ़तासे कहा—नहीं।

राजकुमार व्यंग्य भावसे बोला—क्यों, क्या चित्तौड़की जलवायु पसन्द आ गया?

प्रभाने राजकुमारकी ओर तिरस्कृत नेत्रोंसे देखकर कहा—संसारमें अपनी सब आशायें पूरी नहीं होतीं। जिस तरह यहाँ मैं अपना जीवन काट रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ। किन्तु लोकनिन्दा भी तो कोई चीज़ है। संसारकी दृष्टिमें मैं चित्तौड़की रानी हो चुकी। अब राणा जिस भाँति रक्खें उसी भाँति रहूँगी। मैं अन्त समय तक उनसे घृणा करूँगी, जलूँगी, कुढ़ूँगी, जब जलन न सही जायगी, विष खाऊँगी, या

छातीमें कटार मार कर मर जाऊँगी। लेकिन इसी भवनमें। इस घरसे बाहर कदापि पैर न निकालूँगी।

राजकुमारके मनमें सन्देह हुआ कि प्रभा पर राणाका वशीकरण मन्त्र चल गया। यह मुझसे छल कर रही है। प्रेमकी जगह ईर्षा पैदा हुई। वह उग्र भावसे बोला—और यदि मैं तुम्हें यहाँसे उठा ले जाऊँ? प्रभाके तीवर बदल गये। बोली—तो मैं वही करूँगी जो ऐसी अवस्थामें क्षत्राणियाँ किया करती हैं। या तो अपने गलेमें छुरी मार लूँगी, या तुम्हारे गलेमें।

राजकुमार एक पग और आगे बढ़ा कर यह कटुवाक्य बोला—राणाके साथ तो तुम खुशीसे चली आईं। उस समय यह छुरी कहाँ गई थी?

प्रभाको यह शब्द शर सा लगा। वह तिलमिला कर बोली—उस समय इस छुरीके एक वारसे खूनकी नदी बहने लगती। मैं नहीं चाहती थी कि मेरे कारण मेर भाई बन्धुओंकी जान जाय। इसके सिवाय मैं कुँवारी थी। मुझे अपनी मर्यादाके भंग होनेका कोई भय न था। मैंने पतिव्रत नहीं लिया था। कमसे कम संसार मुझे ऐसा समझता था। मैं अपनी दृष्टिमें अब भी वही हूँ। किन्तु संसारकी दृष्टिमें कुछ और हो गई हूँ। लोकलाजने मुझे राणाकी आज्ञाकारिणी बना दिया है। पातिव्रतकी बेड़ी जबरदस्ती मेरे पैरोंमें डाल दी गई है। अब इसीकी रक्षा करना मेरा धर्म है। इसके विपरीत और कुछ करना क्षत्राणियोंके नामको कलंकित करना है। तुम मेरे घाव पर व्यर्थ नमक क्यों छिड़कते हो? यह कौनसी भलमनसी है। मेरे भाग्यमें जो कुछ बदा है वह भोग रही हूँ। मुझे भोगने दो और तुमसे विनती करती हूँ कि शीघ्र ही यहाँसे चले जाओ।

राजकुमार एक पग और बढ़ा कर दुष्ट भावसे बोला—प्रभा, यहाँ आकर तुम त्रियाचरित्रमें निपुण हो गई। तुम मेरे साथ विश्वासघात करके अब धर्मकी आड़ ले रही हो। तुमने मेरे प्रणयको पैरोंतले कुचल दिया और अब मर्यादाका बहाना ढूँढ़ रही हो। मैं इन नेत्रोंसे राणाको तुम्हारे सौन्दर्यपुष्पका भ्रमर बनते नहीं देख सकता। मेरी कामनायें मिट्टीमें मिलती हैं तो तुम्हें लेकर जायेंगी। मेरा जीवन नष्ट होता है तो उसके पहले तुम्हारे जीवनका भी अन्त होगा। तुम्हारी बेवफ़ाईका यही दण्ड है। बोलो क्या निश्चय करती हो? इस समय मेरे साथ चलती हो या नहीं? किलेके बाहर मेरे आदमी खड़े हैं।

प्रभाने निर्भयतासे कहा—नहीं।

राजकुमार—सोच लो, नहीं तो पछताओगी।

प्रभा—खूब सोच लिया है।

राजकुमारने तलवार खींच ली और वह प्रभाकी तरफ लपका। प्रभा भयसे आँखें बन्द किये एक क़दम पीछे हट गई। माल्म होता था उसे मूर्च्छा आ जायगी।

अकस्मात् राणा तलवार लिये वेगके साथ कमरेमें दाखिल हुए। राजकुमार सँभलकर खड़ा हो गया।

राणाने सिहके समान गरज कर कहा—दूर हट। क्षत्रिय स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाते। राजकुमारने तन कर उत्तर दिया—लज्जाहीन स्त्रियोंकी यही सज़ा है।

राणाने कहा—तुम्हारा वैरी तो मैं था। मेरे सामने आते क्यों लजाते थे! ज़रा मैं भी तुम्हारी तलवारकी काट देखता।

राजकुमारने ऐंठकर राणा पर तलवार चलाई। शस्त्रविद्यामें राणा अतिकुशल थे। वार खाली देकर राजकुमार पर झपटे। इतनेमें प्रभा

जो मूर्छित अवस्थामें दीवारसे चिमटी खड़ी थी, बिजलीकी तरह झपक कर राजकुमारके सामने खड़ी हो गई । राणा वार कर चुके थे । तलवारका पूरा हाथ उसके कन्धे पर पड़ा । रक्तकी फुहार छूटने लगी । राणाने एक ठण्डी साँस ली और उन्होंने तलवार हाथसे फेंक कर गिरती हुई प्रभाको सँभाल लिया ।

क्षणमात्रमें प्रभाका मुखमण्डल वर्णहीन हो गया । आँखें बुझ गईं । दीपक ठण्डा हो गया । मन्दारकुमारने भी तलवार फेंक दी और वह आँखोंमें आँसू भरे प्रभाके सामने घुटने टेककर बैठ गया । दोनों प्रेमियोंकी आँखें सजल थीं । पतिंगे बुझे हुए दीपक पर जान दे रहे थे ।

प्रेमके रहस्य निराले हैं । अभी एक क्षण हुए राजकुमार प्रभा पर तलवार लेकर झपटा था । प्रभा किसी प्रकार उसके साथ चलने पर उद्यत न होती थी । लज्जाका भय, धर्मकी बेड़ी, कर्तव्यकी दीवार, रास्ता रोके खड़ी थी । परन्तु उसे तलवारके सामने देखकर उसने उस पर अपना प्राण अर्पण कर दिया । प्रीतिकी प्रथा निवाह दी । लेकिन अपने वचनके अनुसार उसी घरमें ।

हाँ, प्रेमके रहस्य निराले हैं । अभी एक क्षण पहले राजकुमार प्रभा पर तलवार लेकर झपटा था । उसके खूनका प्यासा था । ईर्षाकी अग्नि उसके हृदयमें दहक रही थी । वह रुधिरकी धारासे शान्त हो गई । कुछ देर तक वह अचेत बैठा रोता रहा । फिर उठा और उसने तलवार उठाकर ज़ोरसे अपनी छातीमें चुभा ली । फिर रक्तकी फुहार निकली । दोनों धारायें मिल गईं और उनमें कोई भेद न रहा ।

प्रभा उसके साथ चलने पर राज़ी न थी । किन्तु वह प्रेमके बन्धनको तोड़ न सकी । दोनों उस घरहीसे नहीं, संसारसे एक साथ सिधारे ।

पापका अग्निकुण्ड ।

[१]

कुँवर पृथ्वीसिंह महाराज यशवन्तसिंहके पुत्र थे । रूप, गुण और विद्यामें निपुण थे । ईरान, मिश्र, श्याम आदि देशोंमें परिभ्रमण कर चुके थे और कई भाषाओंके पण्डित समझे जाते थे । इनकी एक बहिन थी जिसका नाम राजनन्दिनी था । यह भी जैसी सुरूपवती और सर्व-गुणसम्पन्ना थी; वैसी ही प्रसन्नवदना, मृदुभाषिणी भी थी । कड़वी बात कहकर किसीका जी दुखाना उसे पसंद नहीं था । पापको तो वह अपने पास भी नहीं फटकने देती थी । यहाँ तक कि कई बार महा-राज यशवन्तसिंहसे भी वादानुवाद कर चुकी थी और जब कभी उन्हें किसी बहाने कोई अनुचित काम करते देखती, तो उसे यथाशक्ति रोकनेकी चेष्टा करती । इसका ब्याह कुँवर धर्मसिंहसे हुआ था । यह एक छोटी रियासतका अधिकारी और महाराज यशवन्तसिंहकी सेनाका उच्चपदाधिकारी था । धर्म्मसिंह बड़ा उदार और कर्म्मवीर था । इसे होनहार देखकर महाराजने राजनन्दिनीको इसके साथ ब्याह दिया था और दोनों बड़े प्रेमसे अपना वैवाहिक जीवन बिताते थे । धर्म्मसिंह अधिकतर जोधपुरमें ही रहता था । पृथ्वीसिंह उसके गाढ़े मित्र थे । इनमें जैसी मित्रता थी, वैसी भाइयोमें भी नहीं होती । जिस प्रकार इन दोनों राजकुमारोमें मित्रता थी, उसी प्रकार दोनों राजकुमारियाँ भी एक दूसरी पर जान देती थीं । पृथ्वीसिंहकी स्त्री दुर्गाकुँवर बहुत सुशीला और चतुरा थी । ननद भावजमें अनबन होना लोकरीति है, पर इन दोनोंमें इतना स्नेह था कि एकके बिना दूसरीको कभी कल नहीं पड़ता था । दोनों स्त्रियाँ संस्कृतसे प्रेम रखती थीं ।

एक दिन दोनों राजकुमारियाँ बाग़की सैरमें मग्न थीं कि एक दासीने राजनन्दिनीके हाथमें एक कागज़ लाकर रख दिया। राजनन्दिनीने उसे खोला तो वह संस्कृतका एक पत्र था। उसे पढ़कर उसने दासीसे कहा कि उन्हें भेज दे। थोड़ी देरमें एक स्त्री सिरसे पैर तक एक चादर ओढ़े आती दिखाई दी। इसकी उम्र २५ सालसे अधिक न थी, पर इसका रंग पीला था। आँखें बड़ी और ओठ सूखे; चालढालमें कोमलता थी और उसके डीलडौलका गठन बहुत ही मनोहर था। अनुमानसे जान पड़ता था कि समयने उसकी यह दशा कर रक्खी है पर एक समय वह भी होगा जब यह बड़ी सुन्दर होगी। उस स्त्रीने आकर चौखट चूमी और आशीर्वाद देकर फ़र्श पर बैठ गई। राजनन्दिनीने उसे सिरसे पैर तक बड़े ध्यानसे देखा और पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? उसने उत्तर दिया—मुझे व्रजविलासिनी कहते हैं।

"कहाँ रहती हो?"

"यहाँसे तीन दिनकी राह पर एक गाँव विक्रम नगर है, वहीं मेरा घर है।"

"संस्कृत भाषा कहाँ पढ़ी है?"

"मेरे पिताजी संस्कृतके बड़े पण्डित थे, उन्होंने थोड़ी बहुत पढ़ा दी है।"

"तुम्हारा ब्याह तो हो गया है न?"

ब्याहका नाम सुनते ही व्रजविलासिनीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। वह आवाज सम्हाल कर बोली,–इसका जवाब मैं फिर कभी दूँगी; मेरी रामकहानी बड़ी दुःखमय है। उसे सुनकर आपको दुख होगा इसलिए इस समय क्षमा कीजिये। आजसे व्रजविलासिनी रहने लगी। संस्कृत

साहित्यमें उसका बहुत प्रवेश था। वह राजकुमारियोंको प्रति दिन रोचक कविता पढ़कर सुनाती थी। उसके रंग रूप और विद्याने धीरे धीरे राजकुमारियोंके मनमें उसके प्रति प्रेम और प्रतिष्ठा उत्पन्न कर दी। यहाँ तक कि राजकुमारियों और व्रजविलासिनीकी बड़ाई छुटाई उठ गई और वे सहेलियोंकी भाँति रहने लगीं।

[२]

कई महीने बीत गये। कुँवर पृथ्वीसिंह और धर्म्मसिंह दोनों महाराजके साथ अफ़गानिस्तानकी मुहीम पर गये हुए थे। यहाँ विरहकी घड़ियाँ मेघदूत और रघुवंशके पढ़नेमें कटीं। व्रजविलासिनीको कालिदासकी कवितासे बहुत प्रेम था और वह उनके काव्योंकी व्याख्या ऐसी उत्तमतासे करती और उसमें ऐसी ऐसी बारीकियाँ निकालती कि दोनों राजकुमारियाँ मुग्ध हो जातीं। एक दिन संध्याका समय था, दोनों राजकुमारियाँ फुलवाड़ीमें सैर करने लगीं, तो देखा कि, व्रजविलासिनी हरी हरी घास पर लेटी हुई है और उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। राजकुमारियोंके अच्छे वर्ताव और स्नेहपूर्ण बातचीतसे उसकी सुन्दरता कुछ चमक गई थी। इनके साथ अब वह भी राजकुमारी जान पड़ती थी। पर इन सब बातोंके रहते भी वह बेचारी बहुधा एकान्तमें बैठ कर रोया करती। उसके दिल पर एक ऐसी चोट थी कि, वह उसे दम भर भी चैन नहीं लेने देती थी। राजकुमारियोंने उस समय उसे रोते देखकर बड़ी सहानुभूतिके साथ उसके पास बैठ गईं। राजनन्दिनीने उसका सिर अपनी जाँघ पर रख लिया और उसके गुलाबसे गालोंको थपथपाकर कहा—सखी! तुम अपने दिलका हाल हमें न बताओगी? क्या अब भी हम ग़ैर हैं? तुम्हारा यों अकेले दुःखकी आगमें जलना हमसे नहीं देखा जाता। व्रजवि-

लासिनी आवाज़ सम्हालकर बोली—बहन ! मैं अभागिनी हूँ ! मेरा हाल मत सुनो ।

राज०—अगर बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ ।

व्रज०—क्या, कहो ।

राज०—वही जो मैंने पहले दिन पूछा था । तुम्हारा ब्याह हुआ है कि नहीं ?

व्रज०—इसका जवाब मैं क्या दूँ ? अभी नहीं हुआ ।

राज०—क्या किसीका प्रेमका बाण हृदयमें चुभा हुआ है ?

व्रज०—नहीं बहन, ईश्वर जानता है ।

राज०—तो इतनी उदास क्यों रहती हो ? क्या प्रेमका आनन्द उठानेको जी चाहता है ?

व्रज०—नहीं दुःखके सिवा मनमें प्रेमका स्थान नहीं ।

राज०—हम प्रेमका स्थान पैदा कर देंगी ।

व्रजविलासिनी इशारा समझ गई और बोली—बहन, इन बातोंकी चर्चा न करो ।

राज०—मैं अब तुम्हारा ब्याह रचाऊँगी । दीवान जयचन्दको तुमने देखा है ?

व्रजविलासिनी आँसू भरकर बोली—राजकुमारी, मैं व्रतधारिणी हूँ और अपने व्रतका पूरा करना ही मेरे जीवनका उद्देश्य है । इस प्रण-को निवाहनेके लिए मैं जीती हूँ, नहीं तो मैंने ऐसी ऐसी आफ़तें झेली हैं कि, जीनेकी इच्छा अब नहीं रही । मेरे बाप विक्रमनगरके जागी-रदार थे । मेर सिवा उनके कोई संतान न थी । वे मुझे प्राणसे अ-धिक प्यार करते थे । मेर ही लिए उन्होंने वर्षों संस्कृत साहित्य पढ़ा था । युद्धविद्यामें वे बड़े निपुन थे और कई बार लड़ाईयों पर गये थे ।

एक दिन गोधूलि बेला सब गायें जंगलसे लौट रहीं थीं। मैं अपने द्वार पर खड़ी थी, इतनेमें एक जवान बाँकी पगड़ी बाँधे, हथियार सजाये झूमता आता दिखाई दिया। मेरी प्यारी मोहिनी इसी समय जंगलसे लौटी थी, और उसका बच्चा इधर उधर कल्लोलें कर रहा था। संयोगवश बच्चा उस नवजवानसे टकरा गया। गाय उस आदमी पर झपटी। राजपूत बड़ा साहसी था। उसने शायद सोचा कि भागता हूँ तो कलङ्कका टीका लगता है। तुरंत तलवार म्यानसे खींच ली और वह गाय पर झपटा। गाय झल्लाई हुई तो थी ही, कुछ भी न डरी। मेरी आँखोंके सामने उस राजपूतने उस प्यारी गायको जानसे मार डाला। देखते देखते सैकड़ों आदमी जमा हो गये और उसको टेढ़ी सीधी सुनाने लगे। उतनेमें पिताजी भी आ गये। वे संध्या करने गये थे। उन्होंने आकर देखा कि द्वार पर सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लगी है, गाय तड़फ रही है और उसका बच्चा खड़ा रो रहा है। पिताजीकी आहट सुनते ही गाय कराहने लगी और उनकी ओर उसने कुछ ऐसी दृष्टिसे देखा कि, उन्हें क्रोध आ गया। मेरे बाद इन्हें यह गाय ही प्यारी थी, वे ललकार कर बोले—मेरी गाय किसने मारी है? नवजवान लज्जासे सिर झुकाये सामने आया और बोला—"मैंने।"

पिताजी—तुम क्षत्रिय हो?

रजपूत—हाँ!

पिताजी—तो किसी क्षत्रियसे हाथ मिलाते।

राजपूतका चेहरा तमतमा गया—कोई क्षत्रिय सामने आ जाय! हजारो आदमी खड़े थे, पर किसीका साहस न हुआ कि उस राजपूतका सामना करे। यह देखकर पिताजीने तलवार खींच ली और वे उस पर टूट पड़े। उसने भी तलवार निकाल ली और दोनों

आदमियोंमें तलवारें चलने लगीं । पिताजी बूढ़े थे; सीने पर ज़खम गहरा लगा । गिर पड़े । उन्हें उठाकर लोग घर पर लाये । उनका चेहरा पीला था, पर उनकी आँखोंसे गुस्सेकी चिनगारियाँ निकल रही थीं । मैं रोती हुई उनके सामने आई । मुझे देखते ही उन्होंने सब आदमियोंको वहाँसे हट जानेका सङ्केत किया । जब मैं और पिताजी अकेले रह गये, तो बोले—बेटे ! तुम राजपूतनी हो ?

मैं—जी हाँ ।

पिताजी—राजपूत बातके धनी होते हैं ।

मैं—जी हाँ ।

पिताजी । इस राजपूतने मेरी गायकी जान ली है, इसका बदला तुम्हें लेना होगा ।

मैं—आपकी आज्ञाका पालन करूँगी ।

पिताजी—अगर मेरा बेटा जीता होता तो मैं यह बोझ तुम्हारी गर्दन पर न रखता ।

मैं—आपकी जो कुछ आज्ञा होगी, मैं सिर आँखोंसे पूरी करूँगी ।

पिताजी—तुम प्रतिज्ञा करती हो ?

मैं—जी हाँ ।

पिताजी—इस प्रतिज्ञाको पूरा कर दिखाओगी ?

मैं—जहाँतक मेरा वश चलेगा मैं निश्चय यह प्रतिज्ञा पूरी करूँगी ।

पिताजी—यह मेरी तलवार लो, जबतक तुम यह तलवार उस राजपूतके कलेजेमें न घोंप दो तब तक भोगविलास न करना ।

यह कहते कहते पिताजीके प्राण निकल गये । मैं उसी दिनसे तलवारको कपड़ोंमें छिपाये उस नौजवान राजपूतकी तलाशमें घूमने लगी । वर्षों बीत गये । मैं कभी बस्तियोंमें जाती, कभी पहाड़ों जंग-

लोंकी खाक छानती, पर उस नौजवानका कहीं पता न मिलता। एक दिन मैं बैठी हुई अपने फूटे भाग पर रो रही थी कि, वही नौजवान आदमी आता हुआ दिखाई दिया। मुझे देखकर उसने पूछा—तू कौन है? मैंने कहा—मैं दुखिया ब्राह्मणी हूँ, आप मुझ पर दया कीजिए और मुझे कुछ खानेको दीजिए।

राजपूत—अच्छा। मेरे साथ आ।

मैं उठ खड़ी हुई। वह आदमी बेसुध था। मैंने बिजलीकी तरह चमक कर कपड़ोंमेंसे तलवार निकाली और उसके सीनेमें घोंप दी। इतनेमें कई आदमी आते दिखाई पड़े। मैं तलवार छोड़कर भागी। तीन वर्ष तक पहाड़ों और जंगलोंमें छिपी रही। बार बार जीमें आया कि कहीं डूब मरूँ, पर जान बड़ी प्यारी होती है। न जाने क्या क्या मुसीबतें और कठिनाईयाँ भोगनी हैं, जिनको भोगनेको अभी तक जीती हूँ। अन्तमें जब जंगलमें रहते रहते जी उकता गया, तो जोधपुर चली आई। यहाँ आपकी दयालुताकी चर्चा सुनी। आपकी सेवामें आ पहुँची और तबसे आपकी कृपासे मैं आरामसे जीवन बिता रही हूँ। यही मेरी राम कहानी है।

राजनन्दिनीने लम्बी साँस लेकर कहा—दुनियामें कैसे कैसे लोग भरे हुए हैं। खैर तुम्हारी तलवारने उसका काम तो तमाम कर दिया?

व्रजविलासिनी—कहाँ बहिन! वह बच गया, ज़खम ओछा पड़ा था। उसी शकलके एक नौजवान राजपूतको मैंने जंगलमें शिकार खेलते देखा था। नहीं मालूम वही था या और कोई, शकल बिलकुल मिलती थी।

'कई महीने बीत गये। राजकुमारियोंने जबसे व्रजविलासिनीकी रामकहानी सुनी है, उसके साथ वे और भी प्रेम और सहानुभूतिका वर्ताव करने लगी हैं। पहले बिना संकोच कभी कभी छेड़छाड़ हो जाती थी; पर अब दोनों हरदम उसका दिल बहलाया करतीं हैं! एक दिन बादल घिर हुए थे; राजनन्दिनीने कहा—आज बिहारीलालकी 'सतसई, सुननेको जी चाहता है। वर्षा ऋतु पर उसमें बहुत अच्छे दोहे हैं।'

दुर्गाकुँवर—बड़ी अनमोल पुस्तक है। सखी! तुम्हारी बगलमें जो आलमारी रक्खी है; उसीमें वह पुस्तक है, जरा निकालना। व्रजविलासिनीने पुस्तक उतारी, और उसका पहला ही पृष्ठ खोला था कि, उसके हाथसे पुस्तक छूट कर गिर पड़ी। उसके पहले पृष्ठ पर एक तसबीर लगी हुई थी, वह उसी निर्दयी युवककी तसबीर थी जो उसके बापका हत्यारा था। व्रजविलासिनीकी आँखें लाल हो गईं। त्योरी पर बल पड़ गये। अपनी प्रतिज्ञा याद आगई। पर उसके साथ ही यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस आदमीका चित्र यहाँ कैसे आया और इसका इन राजकुमारियोंसे क्या संबंध है। कहीं ऐसा न हो कि मुझे इनका कृतज्ञ होकर अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़े। राजनन्दिनीने उसकी सूरत देखकर कहा—सखी; क्या बात है? यह क्रोध क्यों? व्रजविलासिनीने सावधानीसे कहा—कुछ नहीं, न जाने क्यों चक्कर आगया था।—

आजसे व्रजविलासिनीके मनमें एक और चिन्ता उत्पन्न हुई। "क्या मुझे राजकुमारियोंका कृतज्ञ होकर अपना प्रण तोड़ना पड़ेगा?", पूरे सोलह महीनेके बाद, अफ़गानिस्थानसे पृथ्वीसिंह और धर्म्मसिंह लौटे। बादशाहकी सेनाको बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। बर्फ़ अधिकतासे पड़ने लगी। पहाड़ोंके दर्रे बर्फ़से ढक गये। आने जानेके

रास्ते बन्द होगये। रसदके सामान कम मिलने लगे। सिपाही भूखों मरने लगे। तब अफ़गानोंने समय पाकर रातको छापे मारने शुरू किये। आख़िर शाहज़ादे मुहीउद्दीनको हिम्मत हारकर लौटना पड़ा।

दोनों राजकुमार ज्यों ज्यों जोधपुरके निकट पहुँचते थे, उत्कण्ठासे उनके मन उमड़े आते थे। इतने दिनोंके वियोगके बाद फिर भेंट होगी। मिलनेकी तृष्णा बढ़ती जाती है। रात दिन मंजिलें काटते चले आते हैं, न थकावट मालूम होती है, न माँदगी। दोनों घायल हो रहे हैं, पर फिर भी मिलनेकी खुशीमें जख़मोंकी तकलीफ़ भूले हुए हैं। पृथ्वीसिंह दुर्गाकुँवरके लिए एक अफ़गानी कटार लाये हैं। धर्मसिंहने राजनन्दिनीके लिए काश्मीरका एक बहुमूल्य शालका जोड़ा मोल लिया है। दोनोंके दिल उमंगसे भरे हुए हैं।

राजकुमारियोंने जब सुना कि, दोनों वीर वापस आते हैं, तो वे फूले अँगों न समाईं। श्रृंगार किया जाने लगा, माँग मोतियोंसे भरी जाने लगी, उनके चहरे खुशीसे दमकने लगे। इतने दिनोंके बिछोहके बाद फिर मिलाप होगा, खुशी आँखोंसे उबली पड़ती है। एक दूसरेको छेड़ती हैं और खुश होकर गले मिलती हैं।

अगहनका महीना था, बरगदकी डालियोंमें मूँगेके दाने लगे हुए थे। जोधपुरके क़िलेसे सलामियोंकी घनगर्ज आवाज़ें आने लगीं। सारे नगरमें धूम मच गई कि कुँवर पृथ्वीसिंह सकुशल अफ़गानिस्तानसे लौट आये। दोनों राजकुमारियाँ थालीमें आरतीके सामान लिए दरवाजेपर खड़ी थीं। पृथ्वीसिंह दरबारियोंके मुजरे लेते हुए महलमें आये। दुर्गाकुँवरने आरती उतारी, और दोनों एक दूसरेको देखकर खुश हो गये। धर्मसिंह भी प्रसन्नतासे ऐंठते हुए अपने महलमें पहुँचे, पर भीतर पैर रखने भी न पाये थे कि छींक हुई, और दाहिनी आँख

फड़कने लगी । राजनन्दिनी आरतीका थाल लेकर लपकी, पर उसका पैर फिसल गया और थाल हाथसे छूटकर गिर पड़ा । धर्मसिंहका माथा ठनका और राजनन्दिनीका चेहरा पीला होगया । यह असगुन क्यों ?

व्रजविलासिनीने दोनों राजकुमारोंके आनेका समाचार सुनकर उन दोनोंके देनेको दो अभिनन्दनपत्र बना रक्खे थे । सबेरे जब कुँवर पृथ्वीसिंह संध्या आदि नित्य क्रियासे निपट कर बैठे तो, वह उनके सामने आई और उसने एक सुन्दर कुशकी चँगेलीमें अभिनन्दनपत्र रखकर दिया । पृथ्वीसिंहने उसे प्रसन्नतासे ले लिया । कविता यद्यपि उतनी बढ़िया न थी, पर वह नई और वीरतासे भरी हुई थी । वे वीररसके प्रेमी थे उसको पढ़कर बहुत खुश हुए और उन्होंने मोतियोंका एक हार उपहार दिया ।

व्रजविलासिनी यहाँसे छुट्टी पाकर कुँवर धर्मसिहके पास पहुँची । वे बैठे हुए राजनन्दिनीको लड़ाईकी घटनायें सुना रहे थे, पर ज्योंही व्रजविलासिनीकी आँख उन पर पड़ी, वह सन्न होकर पीछे हट गई । उसको देखकर धर्मसिंहके चेहरेका भी रंग उड़ गया, होंठ सूख गये और हाथ पैर सनसनाने लगे । व्रजविलासिनी तो उलटे पाँव लौटी, पर धर्मसिंहने चारपाई पर लेट कर दोनों हाथोंसे मुँह ढाँक लिया । राजनन्दिनीने यह दृश्य देखा और उसका फूलसा बदन पसीनेमें तर हो गया । धर्मसिंह सारे दिन पलंग पर चुपचाप पड़े करवटें बदलते रहे । उनका चेहरा ऐसा कुम्हला गया जैसे वे बरसोंके रोगी हों । राजनन्दिनी उनकी सेवामें लगी हुई थी । दिन तो यों कटा, रातको कुँवर साहब संध्याहीसे थकावटका बहाना करके लेट गये । राजनन्दिनी हैरान थी कि माजरा क्या है । व्रजविलासिनी इन्हींके खूनकी

प्यासी है क्या ? सम्भव है कि मेरा प्यारा, मेरा मुकुट धर्मसिंह ऐसा कठोर हो ? नहीं ! नहीं ! ! ऐसा नहीं हो सकता। वह यद्यपि चाहती है कि अपने भावोंसे उनके मनका बोझ हलका करे, पर नहीं कर सकती। अन्तको नींदने उसको अपनी गोदमें ले लिया।

[४]

रात बहुत बीत गई है। आकाशमें अँधेरा छा गया है। सारसकी दुःखसे भरी हुई बोली कभी कभी सुनाई दे जाती है और रह रह कर क़िलेके सन्तरियोंकी आवाज़ कानमें आ पड़ती है। राजनन्दिनीकी आँख एकाएक खुली, तो उसने धर्मसिंहको पलँग पर न पाया। चिन्ता हुई, वह झट उठकर व्रजविलासिनीके कमरेकी ओर चली और दरवाजे पर खड़ी होकर भीतरकी ओर देखने लगी। संदेह पूरा हो गया। क्या देखती है कि व्रजविलासिनी हाथमें तेगा लिये खड़ी है और धर्मसिंह दोनों हाथ जोड़े उसके सामने दीनोंकी तरह घुटने टेके बैठे हैं। यह दृश्य देखते ही राजनान्दिनीका खून सूख गया और उसके सिरमें चक्कर आने लगा, पैर लड़खड़ाने लगे। जान पड़ता था कि गिरी जाती है। वह अपने कमरेमें आई और मुँह ढक कर लेट रही, पर उसकी आँखोंसे एक बूँद भी न निकली। दूसरे दिन पृथ्वीसिंह बहुत सबेरे ही कुँवर धर्मसिंहके पास गये और मुसकरा कर बोले—भैया, मौसिम बड़ा सोहावना है, शिकार खेलने चलते हो ?

धर्मसिंह—हाँ चलो।

दोनों राजकुमारोंने घोड़े कसवाये और जंगलकी ओर चल दिये। पृथ्वीसिंहका चेहरा खिला हुआ था, जैसे कमलका फूल। एक एक अंगसे तेजी और चुस्ती टपकी पड़ती थी। पर कुंवर धर्मसिंहका चेहरा मैला हो रहा था, मानो बदनमें जान ही नहीं है। पृथ्वीसिं-

हने उन्हें कई बार छेड़ा, पर जब देखा कि वे बहुत दु:खी हैं; तो चुप हो गये । चलते चलते दोनों आदमी एक झीलके किनारे पर पहुँचे । एकाएक धर्मसिंह ठिठके और बोले—"मैंने आज रातको एक दृढ़ प्रतिज्ञा की है ।" यह कहते कहते उनकी आँखोंमें पानी आ गया । पृथ्वीसिंहने घबड़ा कर पूछा—कैसी प्रतिज्ञा ?

"तुमने व्रजविलासिनीका हाल सुना है ? मैंने प्रतिज्ञा की है कि जिस आदमीने उसके बापको मारा है उसे भी जहन्नुम पहुँचा दूँ ।"

"तुमने सचमुच वीर प्रतिज्ञा की है ।"

"हाँ यदि मैं पूरा कर सकूँ । तुम्हारे विचारमें ऐसा आदमी मारने योग्य है या नहीं ?"

"ऐसे निर्दयकी गर्दन गुडल छुरीसे काटनी चाहिए !"

"बेशक, यही मेरा भी विचार है । यदि मैं किसी कारणसे यह काम न कर सकूँ तो तुम मेरी प्रतिज्ञा पूरी कर दोगे ?"

"बड़ी खुशीसे । तुम उसे पहचानते हो न ?"

"हाँ अच्छी तरह ।"

"तो अच्छा होगा, यह काम मुझको ही करने दो, तुम्हें शायद उस पर दया आजाय ।"

"बहुत अच्छा । पर यह याद रक्खो वह आदमी बड़ा भाग्यशाली है । कई बार मौतके मुँहसे बचकर निकला है । क्या आश्चर्य्य है कि तुमको भी उस पर दया आ जाय । इसलिए तुम प्रतिज्ञा करो कि उसे ज़रूर जहन्नुम पहुँचाओगे ।"

पृथ्वीसिंह—मैं दुर्गाकी शपथ खाकर कहता हूँ कि उस आदमीको अवश्य मारूँगा ।

" बस, हम दोनों मिलकर कार्य सिद्ध कर लेंगे। तुम अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहोगे न?"

" क्यों? क्या मैं सिपाही नहीं हूँ? एक बार जो प्रतिज्ञा की समझ लो कि वह पूरी करूँगा, चाहे इसमें अपनी जान ही क्यों न चली जाय।"

" सब अवस्थाओंमें?"

" हाँ सब अवस्थाओंमें।"

" यदि वह तुम्हारा कोई बन्धु हो तो?"

पृथ्वीसिंहने धर्मसिंहको विचारपूर्वक देखकर कहा—कोई बंधु हो तो?—

धर्मसिंह—हाँ सम्भव है कि वह तुम्हारा कोई नातेदार हो।

पृथ्वीसिंह—(जोशमें) कोई हो, यदि वह मेरा भाई भी हो, तोभी जीता चुनवा दूँ।

धर्मसिंह घोड़ेसे उतर पड़े। उनका चेहरा उतरा हुआ था और ओंठ काँप रहे थे। उन्होंने कमरसे तेगा खोलकर ज़मीन पर रख दिया और पृथ्वीसिंहको ललकार कर कहा—"पृथ्वीसिंह तैयार हो जाओ। वह दुष्ट मिल गया।" पृथ्वीसिंहने चौंककर इधर उधर देखा तो धर्मसिंहके सिवाय और कोई दिखाई न दिया।

धर्मसिंह—तेगा खींचो।

पृथ्वीसिंह—मैंने उसे नहीं देखा।

धर्मसिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है। वह दुष्ट कुकर्मी धर्मसिंह ही है।

पृथ्वीसिंह—(घबराकर) ऐं तुम!—मैं!

धर्मसिंह—राजपूत, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।

सतीके वचन कभी झूठे हुए हैं ? एकाएक चितामें आग लग गई। जयजयकारके शब्द गूँजने लगे। सतीका मुख आगमें यों चमकता था जैसे सबेरेकी ललाईमें सूर्य चमकता है। थोड़ी देरमें वहाँ राखके ढेरके सिवा और कुछ न रहा।

इस सतीके मनमें कैसा सत था। परसों जब उसने व्रजविलासिनीको झझककर धर्म्मसिंहके सामने जाते देखा था उसी समयसे उसके दिलमें संदेह हो गया था। पर जब रातको उसने देखा कि मेरा पति इसी स्त्रीके सामने दुखियाकी तरह बैठा हुआ है, तब वह सन्देह निश्चयकी सीमा तक पहुँच गया। और यह निश्चय अपने साथ सत लेता आया था। सबेरे जब धर्म्मसिंह उठे तब राजनन्दिनीने कहा था कि मैं व्रजविलासिनीके शत्रुका सिर चाहती हूँ, तुम्हें लाना होगा और ऐसा ही हुआ। अपने सती होनेके सब कारण राजनन्दिनीने जानबूझकर पैदा किये थे, क्योंकि इसके मनमें सत था। पापकी आग कैसी तेज होती है ? एक पापने कितनी जानें लीं ? राजवंशके दो कुमार और दो कुमारियाँ देखते देखते इस अग्निकुंडमें स्वाहा हो गईं। सतीका वचन सच हुआ और सात ही सप्ताहके भीतर पृथ्वीसिंह दिल्लीमें कतल किये गये और दुर्गाकुमारी सती हो गई।

जुगनूकी चमक।

(१)

पंजाबके सिंह राजा रणजितसिंह संसारसे चल चुके थे और राज्यके वे प्रतिष्ठित पुरुष जिनके द्वारा उसका उत्तम प्रबन्ध चल रहा था, परस्परके द्वेष और अनबनके कारण मर मिटे थे। राजा रणजित-

सिंहका बनाया हुआ सुन्दर किन्तु खोखला भवन अब नष्ट हो चुका था। कुँवर दलीपसिंह अब इँग्लैंडमें थे और रानी चन्द्रकुँवरि चुनारके दुर्गमें। रानी चन्द्रकुँवरिने विनष्ट होते हुए राज्यको बहुत सँभालना चाहा किन्तु वह राज्यशासनप्रणाली न जानती थी और कूटनीति ईर्षाकी आग भड़कानेके सिवा और क्या करती?

रातके बारह बज चुके थे। रानी चन्द्रकुँवरि अपने निवासभवनके ऊपर छतपर खड़ी गंगाकी ओर देख रही थी और सोचती थी—लहरें क्यों इस प्रकार स्वतंत्र हैं? उन्होंने कितने गाँव और नगर डुबाये हैं, कितने जीवजंतु तथा द्रव्य निगल गई हैं; किन्तु फिर भी वे स्वतंत्र हैं। कोई उन्हें बन्द नहीं करता। इसी लिए न कि वे बन्द नहीं रह सकतीं। वे गरजेंगी, बल खायेंगी—और बाँधके ऊपर चढ़-कर उसे नष्ट कर देंगी। अपने जोरसे उसे बहा ले जायेंगी।"

यह सोचते विचारते रानी गादीपर लेट गई। उसकी आँखोंके सामने पूर्वावस्थाकी स्मृतियाँ मनोहर स्वप्नकी भाँति आने लगीं। कभी उसकी भौंहकी मरोड़ तलवारसे भी अधिक तीव्र थी और उसकी मुसकराहट वसंतकी सुगंधित समीरसे भी अधिक प्राणपोषक। किन्तु हाय अब इनकी शक्ति हीनावस्थाको पहुँच गयी! रोवे तो अपनेको सुनानेके लिए, हँसे तो अपनेको बहलानेके लिए। यदि बिगड़े तो किसीका क्या बिगाड़ सकती है और प्रसन्न हो तो किसीका क्या बना सकती है? रानी और बाँदीमें कितना अंतर है? रानीकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें झरने लगीं, जो कभी विषसे अधिक प्राणनाशक और अमृतसे अधिक अनमोल थे। वह इसी भाँति अकेली, निराश कितनी बार रोई थी, जब कि आकाशके तारोंके सिवा और कोई देखने-वाला न था।

[२]

इसी प्रकार रोते रोते रानीकी आँख लग गई। उसका प्यारा, कलेजेका टुकड़ा कुँवर दलीपसिंह, जिसमें उसके प्राण बसते थे, उदासमुख आकर सामने खड़ा हो गया। जैसे गाय दिनभर जंगलोंमें रहनेके पश्चात् संध्याको घर आती है और अपने बछड़ेको देखते ही प्रेम और उमंगसे मतवारी होकर, स्तनोंमें दूध भरे, पूँछ उठाये, दौड़ती है, उसी भाँति चन्द्रकुँवरि अपने दोनों हाथ फैलाये अपने प्यारे कुँवरको छातीसे लपटानेके लिए दौड़ी। परंतु आँख खुल गई और जीवनकी आशाओंकी भाँति वह स्वप्न भी विनष्ट होगया। रानीने गंगाकी ओर देखा, और कहा—मुझे भी अपने साथ लेती चलो। इसके बाद रानी तुरंत छतसे उतरी। कमरेमें एक लालटेन जल रही थी। उसके उजेलेमें उसने एक मैली साड़ी पहनी, गहने उतार दिये, रत्नोंके एक छोटेसे बक्सको और एक तीव्र कटारको कमरमें रक्खा। जिस समय वह बाहर निकली, नैराश्यपूर्ण साहसकी मूर्ति थी।

सन्तरीने पुकारा। रानीने उत्तर दिया—मैं हूँ झंगी।

"कहाँ जाती है?"

"गँगाजल लाऊँगी। सुराही टूट गई है। रानीजी पानी माँग रही हैं।"

सन्तरी कुछ समीप आकर बोला—चल, मैं भी तेरे साथ चलता हूँ। ज़रा रुक जा।

झंगी बोली—मेर साथ मत आओ। रानी कोठे पर हैं। देख लेंगी।

सन्तरीको धोखा देकर चन्द्रकुँवरि गुप्तद्वारसे होती हुई अँधेरेमें काँटोंसे उलझती, चट्टानोंसे टकराती गंगाके किनारे जा पहुँची।

रात आधीसे अधिक जा चुकी थी। गंगाजीमें संतोषप्रदायनी शांति विराज रही थी। तरङ्गें तारोंको गोदमें लिये सो रही थीं। चारों ओर सन्नाटा था।

रानी नदीके किनारे किनारे चली जाती थी और मुड़ मुड़ कर पीछे देखती थी। एकाएक एक डोंगी खूँटेसे बँधी हुई देख पड़ी। रानीने उसे ध्यानसे देखा तो मल्लाह सोया हुआ था। उसे जगाना, कालको जगाना था। वह तुरंत रस्सी खोल कर नाव पर सवार होगई। नाव धीरे धीर धारके सहारे चलने लगी, शोक और अंधकार-मय स्वप्नकी भाँति जो ध्यानकी तरंगोंके साथ बहा चला जाता हो। नावके हिलनेसे मल्लाह चौंक कर उठ बैठा। आँखें मलते मलते उसने सामने देखा तो पटरे पर एक स्त्री हाथमें डाँड़ लिये बैठी है। घबराकर पूछा—तैं कौन है रे? नाव कहाँ लिये जात है? रानी हँस पड़ी। भयके अन्तको साहस कहते हैं। बोली—सच बताऊँ या झूठ।

मल्लाह कुछ भयभीत सा होकर बोला—सच बतावा जाय।

रानी बोली—अच्छा तो सुन। मैं लाहौरकी रानी चंद्रकुँवरि हूँ। इसी किलेमें कैद थी। आज भागी जाती हूँ। मुझे जल्दी बनारस पहुँचा दे। तुझे निहाल कर दूँगी और यदि शरारत करेगा तो देख, इस कटारसे सिर काट दूँगी। सबेरा होनेसे पहले मुझे बनारस पहुँचना चाहिए।

यह धमकी काम कर गई! मल्लाहने विनीत भावसे अपना कम्बल बिछा दिया और तेजीसे डाँड़ चलाने लगा। किनारेके वृक्ष और ऊपर जगमगाते था हुए तारे साथ साथ दौड़ने लगे।

(३)

प्रातःकाल चुनारके दुर्गमें प्रत्येक मनुष्य अचम्भित और व्याकुल थ। सन्तरी, चौकीदार और लौंडियाँ सब सिर नीचे किये दुर्गके

स्वामीके सामने उपस्थित थे। अन्वेषण हो रहा था परन्तु कुछ पता न चलता था।

उधर रानी बनारस पहुँची। परन्तु वहाँ पहलेहीसे पुलिस और सेनाका जाल बिछा हुआ था। नगरके नाके बन्द थे। रानीका पता लगानेवालेके लिए एक बहुमूल्य पारितोषिककी सूचना दी गई थी।

बन्दीगृहसे निकलकर रानीको ज्ञात होगया कि वह और दृढ़ कारागारमें है। दुर्गमें प्रत्येक मनुष्य उसका आज्ञाकारी था। दुर्गका स्वामी भी उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। किन्तु आज स्वतंत्र होकर भी उसके ओठ बन्द थे। उसे सभी स्थानोंमें शत्रु देख पड़ते थे। पंखरहित पक्षीको पिंजरेके कोनेहीमें सुख है।

पुलिसके अफसर प्रत्येक आनेजानेवालेको ध्यानसे देखते थे, किन्तु उस भिखारिनीकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता था, जो एक फटी हुई साड़ी पहने यात्रियोंके पीछे पीछे धीरे धीरे सिर झुकाये गंगाकी ओरसे चली आ रही है। न वह चौंकती है, न हिचकती है, न घबराती है। इस भिखारनीकी नसोंमें रानीका रक्त है।

यहाँसे भिखारिनीने अयोध्याकी राह ली। वह दिनभर विकट मार्गोंसे चलती, और रातको किसी सूनसान स्थान पर लेट रहती थी। मुख पीला पड़ गया था। पैरोंमें छाले थे। फूलसा बदन कुम्हला गया था।

वह प्रायः गाँवोंमें लाहौरकी रानीके चरचे सुनती। कभी कभी पुलिसके आदमी भी उसे रानीकी टोहमें दत्तचित्त देख पड़ते। उन्हें देखते ही भिखारिनीके हृदयमें सोई हुई रानी जाग उठती। वह आँखें उठाकर उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखती और शोक तथा क्रोधसे उसकी आखें जलने लगतीं। एक दिन अयोध्याके समीप पहुँचकर रानी एक वृक्षके नीचे बैठी हुई थी। उसने कमरसे कटार निकालकर सामने रख

दी थी। वह सोच रही थी कि कहाँ जाऊँ ? मेरी यात्राका अन्त कहा है ? क्या इस संसारमें अब मेरे लिए कहीं ठिकाना नहीं है ? वहाँसे थोड़ी दूरपर आमोंका एक बहुत बड़ा बाग़ था। उसमें बड़े बड़े डेरे और तम्बू गड़े हुए थे। कई एक सन्तरी चमकीली वर्दियाँ पहने टहल रहे थे, कई घोड़े बँधे हुए थे। रानीने इस राजसी टाटबाटको शोककी दृष्टिसे देखा। एक बार वह भी काश्मीर गई थी। उसका पड़ाव इससे कहीं बढ़कर था।

बैठे बैठे सन्ध्या होगई। रानीने वहीं रात काटना निश्चय किया। इतनेमें एक बूढ़ा मनुष्य टहलता हुआ आया और उसके समीप खड़ा होगया। ऐंठी हुई दाढ़ी थी, शरीरमें सटा हुआ चपकन था, कमरमें तलवार लटक रही थी। इस मनुष्यको देखते ही रानीने तुरंत कटार उठाकर कमरमें खोंस ली। सिपाहीने उसे तीव्र दृष्टिसे देखकर पूछा—बेटी कहाँसे आती हो ?

रानीने कहा—बहुत दूरसे।

"कहाँ जाओगी ?"

"यह नहीं कह सकती, बहुत दूर।"

सिपाहीने रानीकी ओर फिर ध्यानसे देखा और कहा—ज़रा अपनी कटार मुझे दिखाओ। रानी कटार सम्भालकर खड़ी हो गई और तीव्र स्वरसे बोली—मित्र हो या शत्रु ? ठाकुरने कहा—मित्र। सिपाहीके बातचीत करनेके ढंग और चेहरेमें कुछ ऐसी विलक्षणता थी जिससे रानीको विवश होकर विश्वास करना पड़ा।

वह बोली—विश्वासघात न करना। यह देखो।

ठाकुरने कटार हाथमें ली। उसे उलटपलट कर देखा और बड़े नम्र भावसे उसे आँखोंसे लगाया। तब रानीके आगे विनीत भावसे

सिर झुका कर वह बोला—महारानी चन्द्रकुँवरि ! रानीने करुणास्वरसे कहा—नहीं, अनाथ भिखारनी । तुम कौन हो ?

सिपाहीने उत्तर दिया—आपका एक सेवक ।

रानीने उसकी ओर निराश दृष्टिसे देखा और कहा, दुर्भाग्यके सिवा इस संसारमें मेरा कोई नहीं ।

सिपाहीने कहा—महारानीजी, ऐसा न कहिए । पंजाबके सिंहकी महारानीके वचन पर अब भी सैकड़ों सिर झुक सकते हैं । देशमें ऐसे लोग वर्त्तमान हैं जिन्होंने आपका नमक खाया है और उसे भूले नहीं हैं ।

रानी—अब इसकी इच्छा नहीं । केवल एक शांत-स्थान चाहती हूँ, जहाँ पर एक कुटीके सिवा और कुछ न हो ।

सिपाही—ऐसा स्थान पहाड़ोंहीमें मिल सकता है । हिमालयकी गोदमें चलिये, वहीं आप उपद्रवोंसे बच सकती हैं ।

रानी (आश्चर्य्यसे)—शत्रुओंमें जाऊँ ? नैपाल कब हमारा मित्र रहा है ?

सिपाही—राणा जंगबहादुर दृढ़ प्रतिज्ञ राजपूत हैं ।

रानी—किन्तु वही जंगबहादुर तो हैं जो अभी अभी हमारे विरुद्ध लार्ड डिलहौज़ीको सहायता देने पर उद्यत था ।

सिपाही (कुछ लज्जित सा होकर)—तब आप महारानी चन्द्र-कुँवरि थीं, आज आप भिखारनी हैं । ऐश्वर्य्यके द्वेषी और शत्रु चारों ओर होते हैं । लोग जलती हुई आगको पानीसे बुझाते हैं, पर राख माथे पर चढ़ाई जाती है । आप ज़रा भी सोच विचार न करें । नैपालमें अभी धर्मका लोप नहीं हुआ है । आप भयत्याग करें और चलें देखिए वह आपको किस भाँति सिर और आँखों पर बिठाता है ।

रानीने रात इसी वृक्षकी छायामें काटी। सिपाही भी वहीं सोया। प्रातःकाल वहाँ पर दो तीव्रगामी घोड़े देख पड़े। एक पर सिपाही सवार था और दूसरे पर एक अत्यंत रूपवान् युवक। यह रानी चन्द्रकुँवरि थी, जो अपनी रक्षास्थानकी खोजमें नैपाल जाती थी। कुछ देर पीछे रानीने पूछा—यह पड़ाव किसका है? सिपाहीने कहा—राणा जंगबहादुरका। वे तीर्थयात्रा करने आये हैं। किन्तु हमसे पहले पहुँच जायँगे।

रानी—तुमने उनसे मुझे यहीं क्यों न मिला दिया? उनका हार्दिक भाव प्रकट हो जाता।

सिपाही—यहाँ उनसे मिलना असम्भव था। आप जासूसोंकी दृष्टिसे बच न सकतीं।

[४]

उस समयमें यात्रा करना प्राणको अर्पण कर देना था। दोनों यात्रियोंको अनेकों बार डाकुओंका सामना करना पड़ा। उस समय रानीकी वीरता, उसका युद्धकौशल तथा फुर्ती देखकर बूढ़ा सिपाही दाँतों तले उँगली दबाता था। कभी उनकी तलवार काम कर जाती और कभी घोड़ोंकी तेज चाल।

यात्रा बड़ी लम्बी थी। जैठका महीना मार्गहीमें समाप्त हो गया। वर्षा ऋतु आई। आकाशमें मेघ-माला छाने लगी। सूखी नदियाँ उतरा चलीं। पहाड़ी नाले गरजने लगे। न नदियोंमें नाव, न नालों पर घाट। किन्तु घोड़े सधे हुए थे। स्वयं पानीमें उतर जाते और डूबते उतराते, बहते भँवर खाते पार जा पहुँचते। एक बार बिच्छूने कछुयेकी पीठ पर नदीकी यात्रा की थी। यह यात्रा उससे कम भयदायक न थी।

कहीं ऊँचे ऊँचे साखू और महुएके जंगल थे और कहीं हरे भरे जामुनके बन। उनकी गोदमें हाथियों और हिरनोंके झुंड कल्लोलें कर रहे थे। धानकी क्यारियाँ पानीसे भरी हुई थीं। किसानोंकी स्त्रियाँ धान रोपती और सुहावने गीत गाती थीं। कहीं उन मनोहारी ध्वनियोंके बीचमें, खेतकी मेंड़ पर छातेकी छायामें बैठे हुए ज़मींदारोंके कठोर शब्द सुनाई देते थे।

इसी प्रकार यात्राके कष्ट सहते, अनेकानेक विचित्र दृश्य देखते दोनों यात्री तराई पार करके नैपालकी भूमिमें प्रविष्ट हुए।

[५]

प्रातःकालका सुहावना समय था। नैपालके महाराजा सुरेन्द्र विक्रमसिंहका दरबार सजा हुआ था। राज्यके प्रतिष्ठित मंत्री अपने अपने स्थान पर बैठे हुए थे। नैपालने एक बड़ी लड़ाईके पश्चात् तिब्बत पर विजय पाई थी। इस समय सन्धिकी शर्तों पर विवाद छिड़ा था। कोई युद्धव्ययका इच्छुक था, कोई राजविस्तारका। कोई कोई महाशय वार्षिक कर पर जोर दे रहे थे। केवल राणा जंगबहादुरके आनेकी देर थी। वे कई महीनोंके देशाटनके पश्चात् आज ही रातको लौटे थे और यह प्रसंग जो उन्हींके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा था, अब मंत्रि-सभामें उपस्थित किया गया था। तिब्बतके यात्री, आशा और भयकी दशामें प्रधान मंत्रीके मुखसे अंतिम निर्णय सुननेको उत्सुक हो रहे थे। नियत समय पर चोबदारने राजाके आगमनकी सूचना दी। दरबारके लोग उन्हें सम्मान देनेके लिए खड़े हो गये। महाराजको प्रणाम करनेके पश्चात् वे अपने सुसज्जित आसन पर बैठ गये। महाराजने कहा—राणाजी, आप सन्धिके लिए कौन कौन प्रस्ताव करना चाहते थे?

राणाने नम्रभावसे कहा—मेरी अल्पबुद्धिमें तो इस समय कठोर-ताका व्यवहार करना अनुचित है। शोकाकुल शत्रुके साथ दयालुताका आचरण करना सर्वदा हमारा उद्देश्य रहा है। क्या इस अवसर पर स्वार्थके मोहमें हम अपने बहुमूल्य उद्देशको भूल जायँगे? हम ऐसी सन्धि चाहते हैं जो हमारे हृदयोंको एक कर दे। यदि तिब्बतका दरबार हमें व्यापारिक सुविधायें प्रदान करने पर कटिबद्ध हो तो हम सन्धि करनेके लिए सर्वथा उद्यत हैं।

मंत्रि-मंडलमें विवाद आरम्भ हुआ। सबकी सम्मति इस दयालुताके अनुसार न थी। किन्तु महाराजने राणाका समर्थन किया। यद्यपि अधिकांश सदस्योंको शत्रुके साथ ऐसी नर्मी पसन्द न थी, तथापि महाराजके विपक्षमें बोलनेका किसीको साहस न हुआ।

यात्रियोंके चले जानेके पश्चात् राणा जंगबहादुरने खड़े होकर कहा—सभाके उपस्थित सज्जनो! आज नैपालके इतिहासमें एक नई घटना होनेवाली है जिसे मैं आपकी जातीय नीतिमत्ताकी परीक्षा सम-झता हूँ। इसमें सफल होना आपहीके कर्तव्य पर निर्भर है। आज राजसभामें आते समय मुझे यह आवेदनपत्र मिला है, जिसे मैं आप सज्जनोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ। निवेदकने तुलसी दासकी केवल यह चौपाई लिख दी है—

"आपतकाल परखिए चारी।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी॥"

महाराजने पूछा—यह पत्र किसने भेजा है?

"एक भिखारिनीने।"

"भिखारिनी कौन है?"

"महारानी चन्द्रकुँवरि।"

कड़बड़ खत्रीने आश्चर्य्यसे पूछा—जो हमारे मित्र अँगरेज सरकारसे विरुद्ध होकर भाग आई है ?

राणा जंगबहादुरने लज्जित होकर कहा—जी हाँ ! यद्यपि हम इसी विचारको दूसरे शब्दोंमें प्रकट कर सकते हैं।

कड़बड़ खत्री—अँगरेजोंसे हमारी मित्रता है और मित्रके शत्रुकी सहायता करना मित्रताकी नीतिके विरुद्ध है।

जेनरल शमशेर बहादुर—ऐसी दशामें इस बातका भय है कि अंगरेजी सरकारसे हमारे सम्बन्ध टूट न जायँ।

राजकुमार रणवीरसिंह—हम यह मानते हैं कि अतिथि-सत्कार हमारा धर्म है। किन्तु उसी समयतक जब तक कि हमारे मित्रोंको हमारी ओरसे शंका करनेका अवसर न मिले।

इस प्रसंग पर यहाँ तक मतभेद तथा वादविवाद हुआ कि एक शोरसा मच गया और कई प्रधान यह कहते हुए सुनाई दिये कि महारानीका इस समय आना देशके लिए कदापि मंगलकारी नहीं हो सकता।

तब राणा जंगबहादुर उठे। उनका मुख लाल हो गया था। उनका सद्विचार क्रोध पर अधिकार जमानेके लिए व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। वे बोले—भाइयो ! यदि इस समय मेरी बातें आप लोगोंको अत्यंत कड़ी जान पड़ें तो मुझे क्षमा कीजियेगा, क्योंकि अब मुझमें अधिक श्रवण करनेकी शक्ति नहीं है। अपनी जातीय साहस-हीनताका यह लज्जाजनक दृश्य अब मुझसे नहीं देखा जाता। यदि नैपालके दरबा-रमें इतना भी साहस नहीं कि वह अतिथि-सत्कार और सहायताकी नीतिको निभा सके तो मैं इस घटनाके सम्बन्धमें सब प्रकारका भार

अपने ऊपर लेता हूँ। दरबार अपनेको इस विषयमें निर्दोष समझे और इसकी सर्वसाधारणमें घोषणा कर दे।

कड़बड़खत्री गर्म होकर बोले—केवल यह घोषणा देशको भयसे रक्षित नहीं कर सकती।

राणा जंगबहादुरने क्रोधसे ओठ चबा लिया, किन्तु सँभल कर कहा—देशका शासन-भार अपने ऊपर लेनेवालोंको ऐसी अवस्थायें अनिवार्य हैं। हम उन नियमोंसे—जिन्हें पालन करना हमारा कर्तव्य है—मुँह नहीं मोड़ सकते। अपनी शरणमें आये हुओंका हाथ पकड़ना—उनकी रक्षा करना राजपूतोंका धर्म था। हमारे पूर्व पुरुष सदा इस नियम पर, धर्म पर प्राण देनेको उद्यत रहते थे। अपने माने हुए धर्मको तोड़ना एक स्वतंत्र जातिके लिए लज्जास्पद है। अँगरेज हमारे मित्र हैं और अत्यंत हर्षका विषय है कि बुद्धिशाली मित्र हैं। महारानी चंद्रकुँवरिको अपनी दृष्टिमें रखनेसे उनका उद्देश्य केवल यह था कि उपद्रवी लोगोंके गिरोहका कोई केन्द्र शेष न रहे। यदि उनका यह उद्देश भंग न हो तो हमारी ओरसे शंका होनेका न कोई अवसर है और न हमें उनसे लज्जित होनेकी कोई आवश्यकता।

[६]

कड़बड़—महारानी चंद्रकुँवरि यहाँ किस प्रयोजनसे आई हैं?

राणा जंगबहादुर—केवल एक शान्ति-प्रिय सुखस्थानकी खोजमें, जहाँ उन्हें अपनी दुरवस्थाकी चिन्तासे मुक्त होनेका अवसर मिले। वह ऐश्वर्यशाली रानी जो रंगमहलोंमें सुखविलास करती थी—जिसे फूलोंकी सेज पर भी चैन न मिलता था—आज सैकड़ों कोससे अनेक प्रकारके कष्ट सहन करती, नदी, नाले, पहाड़ जंगल छानती यहाँ केवल एक रक्षित स्थानकी खोजमें आया है। उमड़ी हुई नदियाँ और

उबलते हुए नाले, बरसातके दिन। इन दु:खोंको आप लोग जानते हैं। और यह सब उसी एक रक्षित स्थानके लिए! उसी एक भूमिके टुकड़ेकी आशामें! किन्तु हम ऐसे स्थानहीन हैं कि उसकी यह अभिलाषा भी पूरी नहीं कर सकते। उचित तो यह था कि उतनी सी भूमिके बदले हम अपना हृदय फैला देते। सोचिये, कितने अभिमानकी बात है कि एक आपदामें फँसी हुई रानी अपने दु:खके दिनोंमें जिस देशको याद करती है वह यही पवित्र देश है। महारानी चन्द्रकुँवरिको हमारे इस अभयप्रद स्थान पर—हमारी शरणागतोंकी रक्षा पर—पूरा भरोसा था और वही विश्वास उन्हें यहाँ तक लाया है। इसी आशा पर कि पशुपतिनाथकी शरणमें मुझको शान्ति मिलेगी, वह यहाँ तक आई है। आपको अधिकार है चाहे उसकी आशा पूर्ण करें या उसे धूलमें मिला दें। चाहे रक्षण-शरणागतोंके साथ सदाचरण—के नियमोंको निभाकर इतिहासके पृष्ठों पर अपना नाम छोड़ जायँ, या जातीयता तथा सदाचारसम्बन्धी नियमोंको मिटा कर स्वयं अपनेको पतित समझें। मुझे विश्वास नहीं है कि यहाँ एक मनुष्य भी ऐसा निरभिमान है कि जो इस अवसर पर शरणागत-पालन धर्मको विस्मृति करके अपना सिर ऊँचा कर सके। अब मै आपके अंतिम निपटारेकी प्रतीक्षा करता हूँ। कहिए, आप अपनी जाति और देशका नाम उज्ज्वल करेंगे या सर्वदाके लिए अपने माथे पर अपयशका टीका लगायेंगे?

राजकुमारने उमंगसे कहा—हम महारानीके चरणोंतले आँखें बिछायेंगे।

कप्तान विक्रमसिंह बोले—हम राजपूत हैं और अपने धर्मका निर्वाह करेंगे।

जेनरल बनवीरसिंह—हम उनको ऐसी धूमधामसे लायेंगे कि संसार चकित हो जायगा।

राजा जंगबहादुरने कहा—मैं अपने मित्र कड़वड़खत्रीके मुखसे उनका फ़ैसला सुनना चाहता हूँ।

कड़बड़खत्री एक प्रभावशाली पुरुष थे, और मंत्रिमण्डलमें वे राजा जंगबहादुरकी विरुद्धमण्डलीके प्रधान थे। वे लज्जा भरे शब्दोंमें बोले—यद्यपि मैं महारानीके आगमनको भयरहित नहीं समझता, किन्तु इस अवसर पर हमारा धर्म यही है कि हम महारानीजीको आश्रय दें। धर्मसे मुँह मोड़ना किसी जातिके लिए मानका कारण नहीं हो सकता।

कई ध्वनियोंने उमंग भरे शब्दोंमें इस प्रसंगका समर्थन किया।

महाराज सुरेन्द्रविक्रमसिंहने इस वादविवादको ध्यानसे सुना और कहा—धर्मवीरो! मैं तुम्हें इस निपटारे पर बधाई देता हूँ। तुमने जातिका नाम रख लिया। पशुपति इस उत्तम कार्य्यमें तुम्हारी सहायता करें।

सभा विसर्जित हुई। दुर्गसे तोपें छूटने लगीं। नगरभरमें ख़बर गूँज उठी कि पंजाबकी महारानी चंद्रकुँवरिका शुभागमन हुआ है। जेनरल रणवीरसिंह और जेनरल समरधीरसिंह बहादुर ५००० सेनाके साथ महारानीकी अगवानीके लिए चले।

अतिथिभवनकी सजावट होने लगी। बाज़ार अनेक भाँतिकी उत्तम उत्तम सामग्रियोंसे सजे गये।

ऐश्वर्य्यकी प्रतिष्ठा वा सम्मान सब कहीं होता है, किन्तु किसीने भिखारिनीका ऐसा सम्मान देखा है? सेनायें बैंड बजाती और पताका फहराती हुई एक उमड़ी नदीकी भाँति चली जाती थीं। सारे नगरमें आनन्द ही आनन्द था। दोनों ओर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सजे दर्शकोंका समूह खड़ा था। सेनाके कमांडर आगे आगे घोड़ों पर सवार। सबके आगे राणा जंगबाहादुर, जातीय अभिमानके मदमें लीन, अपने सुवर्ण-

खचित हौदेमें बैठे हुए थे। यह उदारताका एक पवित्र दृश्य था। धर्मशालाके द्वार पर यह जुलूस रुका। राणा हाथीसे उतरे। महारानी चंद्रकुँवरि कोठरीसे बाहर निकल आईं। राणाने झुक कर वंदना की। रानी उनकी ओर आश्चर्यसे देखने लगीं। यह वही उनका मित्र उनका बूढ़ा सिपाही था।

आँखें भर आईं। मुसकराईं। खिले हुए फूल परसे ओसकी बूँदें टपकीं। रानी बोली—मेरे बूढ़े ठाकुर, मेरी नाव पार लगानेवाले! किस भाँति तुम्हारा गुण गाऊँ?

राणाने सिर झुका कर कहा—आपके चरणारविन्दसे हमारे भाग्य उदय हो गये।

[७]

नैपालकी राजसभाने पचीस हज़ार रुपयेसे महारानीके लिए एक उत्तम भवन बनवा दिया और उनके लिए दस हज़ार रुपये मासिक नियत कर दिया।

वह भवन आजतक वर्तमान है और नैपालकी शरणागतप्रियता तथा प्रणपालन-तत्परताका स्मारक है। पंजाबकी रानीको लोग आजतक याद करते हैं।

यह सीढ़ी है जिससे जातियाँ, यशके सुनहले शिखरतक पहुँचती हैं।

ये ही घटनायें हैं जिनसे जातीय इतिहास प्रकाश और महत्त्वको प्राप्त होता है।

पोलिटिकल रेज़ीडेन्टने गवर्नमेंटको रिपोर्ट की। इस बातकी शंका थी कि गवर्नमेंट आव इण्डिया और नैपालके बीच कुछ खिंचाव हो जाय। किन्तु गवर्नमेंटको राणा जंगबहादुर पर पूर्ण विश्वास था।

और जब नैपालकी राजसभाने विश्वास और सन्तोष दिलाया कि महारानी चन्द्रकुँवरिको किसी शत्रुभावके प्रयत्नका अवसर न दिया जायगा, तो भारत सरकारको भी सन्तोष होगया । इस घटनाको भारतीय इतिहासकी अँधेरीरातमें 'जुगनूकी चमक' कहना चाहिए ।

धोखा ।

(१)

सतींकुंडमें खिले हुए कमल वसन्तके धीमे धीमे झोकोंसे लहरा रहे थे और प्रातःकालकी मन्द मन्द सुनहरी किरणें उनसे मिल मिल कर मुसकराती थीं । राजकुमारी 'प्रभा' कुंडके किनारे हरी हरी घास पर खड़ी सुन्दर पक्षियोंका कलरव सुन रही थी उसका कनकवर्ण तन, इन्हीं फूलोंकी भाँति दमक रहा था । मानों प्रभातकी साक्षात् सौम्य मूर्ति थी, जो भगवान अंशुमालीके किरण-करोंद्वारा निर्मित हुई थी।

प्रभाने मौलसरीके वृक्षपर बैठी हुई एक श्यामाकी ओर देखकर कहा—मेरा जी चाहता है कि, मैं भी ऐसी ही चिड़िया होती । उसकी सहेली उमाने मुसकराकर पूछा—यह क्यों !

प्रभाने कुंडकी ओर ताकते हुए उत्तर दिया—वृक्षकी हरी भरी डालियों पर बैठी हुई चहचहाती, मेरे कलरवसे सारा बाग गूँज उठता।

उमाने छेड़कर कहा—नौगढ़की रानी ऐसे कितने ही पक्षियोंका गाना जब चाहे सुन सकती हैं ।

प्रभाने संकुचित होकर कहा—मुझे नौगढ़की रानी बननेकी अभिलाषा नहीं है । मेरे लिए किसी नदीका सूनसान किनारा चाहिए ।

एक वीणा और ऐसे ही सुन्दर सुहावने पक्षियोंकी संगति। मधुरध्वनिमें मेरे लिए सारे संसारका ऐश्वर्य भरा हुआ है। प्रभाका संगीत पर अपरिमित प्रेम था। वह बहुधा ऐसे ही सुखस्वप्न देखा करती थी। उमा उत्तर देना ही चाहती थी कि, इतनेमें बाहरसे किसीके गानेकी आवाज़ आई—

कर गये थोड़े दिनकी प्रीत।

प्रभाने एकाग्र मन होकर सुना और अधीर होकर कहा वहिन इस वाणीमें जादू है। मुझसे अब बिना सुने नहीं रहा जाता, इसे भीतर बुला लाओ।

उमा पर भी गीतका जादू असर कर रहा था। वह बोली निःसन्देह ऐसा राग मैंने आज तक नहीं सुना खिड़की खोलकर बुलाती हूँ।

थोड़ी देरमें रागिया भीतर आया। सुन्दर, सजीले बदनका नौजवान था। नंगे पैर, नंगे सिर, कँधे पर एक मृगचर्म, शरीर पर एक गेरुवा वस्त्र, हाथोंमें एक सितार। मुखारविंदसे तेज छिटक रहा था! उसने दबी हुई दृष्टिसे दोनों कोमलाङ्गी रमणियोंको देखा और सिर झुकाकर बैठ गया।

प्रभाने झिझकती हुई आँखोंसे देखा और दृष्टि नीची कर ली। उमाने कहा—योगीजी, हमारे बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए, हमको भी कोई पद सुनाकर कृतार्थ कीजिये।

योगीने सिर झुकाकर उत्तर दिया—हम योगी लोग नारायणका भजन करते हैं। ऐसे ऐसे दरबारोंमें हम भला क्या गा सकते हैं, पर आपकी इच्छा है तो सुनिए।

कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।
कहाँ वह प्रीत, कहाँ यह बिछुरन, कहँ मधुवनकी रीति—
कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।

योगीका रसीला, करुणस्वर, सितारका सुमधुर निनाद, उस पर गीतका माधुर्य, प्रभाको बेसुध किये देता था। इसका रसज्ञ स्वभाव और उसका मधुर रसीला गाना, अपूर्व संयोग था। जिस भाँति सितारकी ध्वनि गगनमंडलमें प्रतिध्वनित हो रही थी उसी भाँति प्रभाके हृदयमें लहरोंकी हिलोरें उठ रही थीं। वे भावनायें जो अब तक शान्त थीं जाग पड़ीं। हृदय मुखस्वप्न देखने लगा। सतीकुंडके कमल तिलस्मकी परियाँ बन बन कर मँड़राते हुए भौरोंसे, कर जोड़, सजल-नयन हो कहते थे—

कर गये थोड़े दीनकी प्रीति।

सुर्ख और हरी पत्तियोंसे लदी हुई डालियाँ, सिर झुकाये चहकते हुए पक्षियोंसे रो रो कर कहती थीं—

कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।

और राजकुमारी प्रभाका हृदय भी सितारकी मस्तानी तानके साथ गूँजता था—

कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।

[२]

प्रभा बघौलीके राव देवीचन्द्रकी एकलौती कन्या थी। राव पुराने विचारके रईस थे। कृष्णकी उपासनामें लवलीन रहते थे, इसलिए इनके दरबारमें दूर दूरके कलावन्त और गवैये आया करते और इनाम एकराम पाते थे। राव साहबको गानेसे प्रेम था, वे स्वयं भी इस विद्यामें निपुण थे।

यद्यपि अब वृद्धावस्थाके कारण यह शक्ति निःशेष हो चली थी, पर फिर भी इस विद्याके गूढ़ तत्त्वोंके पूर्ण जानकार थे। प्रभा बाल्यकालहीसे इनकी सोहबतोंमें बैठने लगी। कुछ तो पूर्वजन्मका संस्कार और कुछ रात दिन गानेहीकी चर्चाने उसे भी इस फनमें अनुरक्त कर दिया था। इस समय उसके सौन्दर्यकी खूब चर्चा थी। रावसाहबने नौगढ़के नवयुवक और सुशील राजा हरिश्चन्द्रसे उसकी शादी तजवीज़ की थी। उभय पक्षमें तैयारियाँ हो रहीं थीं। राजा हरिश्चन्द्र 'मेयो कालिज' अजमेरके विद्यार्थी, और नई रोशनीके भक्त थे। उनकी आकांक्षा थी कि उन्हें एक बार राजकुमारी प्रभासे साक्षात्कार होने और प्रेमालाप करनेका अवसर दिया जावे। किन्तु रावसाहब इस प्रथाको दूषित समझते थे।

प्रभा राजा हरिश्चन्द्रके नवीन विचारोंकी चर्चा सुनकर इस सम्बन्धसे बहुत संतुष्ट न थी। पर जबसे उसने इस प्रेम-मय युवा योगीका गाना सुना था, तबसे तो वह उसीके ध्यानमें डूबी रहती। उमा उसकी सहेली थी। इन दोनोंके बीच कोई परदा न था, परन्तु इस भेदको प्रभाने उससे भी गुप्त रक्खा। उमा उसके स्वभावसे परिचित थी, ताड़ गई। परन्तु उसने उपदेश करके इस अग्निको भड़काना उचित न समझा। उसने सोचा कि थोड़े दिनोंमें यह अग्नि आपसे आप शान्त हो जायगी। ऐसी लालसाओं-का अंत प्रायः इसी तरह हो जाया करता है। किन्तु उसका अनुमान गलत सिद्ध हुआ। योगीकी वह मोहनी मूर्ति कभी प्रभाकी आँखोंसे न उतरती। उसका मधुर राग प्रतिक्षण उसके कानोंमें गुँजा करता। उसी कुंडके किनारे वह सिर झुकाये सारे दिन बैठी रहती। कल्पनामें वही मधुर हृदयग्राही राग सुनती और वही योगीकी मनोहारिणी मूर्ति देखती। कभी कभी उसे ऐसा भास होता कि बाहरसे वह अलाप आ रही है। वह चौंक पड़ती और तृष्णासे प्रेरित होकर वाटिकाकी चहार दीवारी

तक जाती और वहाँसे निराश होकर लौट आती! फिर आप ही आप विचार करती—यह मेरी क्या दशा है! मुझे यह क्या हो गया है! मैं हिन्दू कन्या हूँ, मातापिता जिसे सौंप दें, उसकी दासी बनकर रहना मेरा धर्म है। मुझे तनमनसे उसकी सेवा करनी चाहिए। किसी अन्य पुरुषका ध्यान तक मनमे लाना मेरे लिए पाप है। आह! यह कलुषित हृदय लेकर मैं किस मुँहसे पतिके पास जाऊँगी। इन कानोंसे क्यों कर प्रणयकी बातें सुन सकूँगी जो मेरे लिए व्यंग्यसे भी अधिक कर्ण-कटु होंगी। इन पापी नेत्रोंसे वह प्यारी प्यारी चितवन कैसे देख सकूँगी जो मेरे लिए वज्रसे भी अधिक हृदय-भेदी होगी। इस गलेमें वे मृदुल प्रेमबाहु पड़ेंगे जो लोहदंडसे भी अधिक भारी और कठोर होंगे। प्यारे! तुम मेरे हृदयमंदिरसे निकल जाओ। यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं। मेरा वश होता तो तुम्हें हृद-यकी सेज पर सुलाती। परन्तु मैं धर्मकी रस्सियोंमें बँधी हूँ। इस तरह एक महीना बीत गया। ब्याहके दिन निकट आते जाते थे और प्रभाका कमल सा मुख कुम्हलाया जाता था। कभी कभी विरह-वेदना एवं विचार-विप्लवसे व्याकुल होकर उसका चित्त चाहता कि सतीकुंडकी गोदमें शान्ति लूँ। किन्तु रावसाहब इस शोकमें जान ही दे देंगे, यह विचार कर वह रुक जाती। सोचती, मैं इनकी जीवनसर्वस्व हूँ। मुझ अभागिनीको इन्होंने किस लाड़ प्यारसे पाला है, मैं ही इनके जीवनका आधार और अन्तकालकी आशा हूँ। नहीं, यों प्राण देकर उनकी आशाओंकी हत्या न करूँगी। मेरे हृदय पर चाहे जो बीते, उन्हें न कुढ़ाऊँगी। प्रभाका एक योगी गवैयेके पीछे उन्मत्त हो जाना कुछ शोभा नहीं देता। योगीका गान तानसेनके गानोंसे भी अधिक मनोहर क्यों न हो, पर एक राजकुमारीका उसके हाथों बिक जाना हृदयकी दुर्बलता

प्रकट करता है; किंतु रावसाहबके दरबारमें विद्याकी, शौर्यकी, और वीरतासे प्राण हवन करनेकी, कोई चर्चा न थी। वहाँ तो रातदिन रागरंगकी धूम रहती थी। यहाँ इसी शास्त्रके आचार्य्य प्रतिष्ठाके मसनद पर विराजित थे, और उन्हीं पर प्रशंसाके बहुमूल्य रत्न लुटाये जाते थे। प्रभाने प्रारम्भहीसे इसी जलवायुका सेवन किया था और उस पर इनका गाढ़ा रंग चढ़ गया था। ऐसी अवस्थामें उसकी कामलिप्साने यदि भीषणरूप धारण कर लिया तो आश्चर्य्य ही क्या है!

[३]

शादी बड़े धूमधामसे हुई। रावसाहबने प्रभाको गलेसे लगा कर बिदा किया। प्रभा बहुत रोई। उमाको तो वह किसी तरह छोड़ती ही न थी।

नौगढ़ एक बड़ी रियासत थी और राजा हरिश्चन्द्रके सुप्रबन्धसे उन्नति पर थी। प्रभाकी सेवाके लिए दासियोंकी एक पूरी फ़ौज थी। उसके रहनेके लिए वह आनन्द-भवन सजाया गया था जिसके बनानेमें शिल्पविशारदोंने अपूर्व कौशलका परिचय दिया था। श्रृंगारचतुराओंने दुलिहिनको खूब सवाँरा। रसीले राजासाहब अधरामृतके लिए विह्वल हो रहे थे, अन्तःपुरमें गये। प्रभाने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर उनका अभिवादन किया। उसकी आँखोंसे आँसूकी नदी बह रही थी। पतिने प्रेमके मदमें मत्त होकर घूँघट हटा दिया। दीपक था, पर बुझा हुआ। फूल था, पर मुरझाया हुआ। दूसरे दिनसे राजासाहबकी यह दशा हुई कि भौंरेकी तरह प्रतिक्षण इस फूल पर मँड़राया करते। न राजपाटकी चिन्ता थी, न सैर और शिकारकी परवा। प्रभाकी वाणी रसीला राग थी, उसकी चितवन सुखका सागर, और उसका मुखचन्द्र

आमोदका सुहावना पुंज था। बस प्रेममदमें राजासाहब बिलकुल मतवाले हो गये थे। उन्हें क्या मालूम था कि दूधमें मक्खी है।

यह असम्भव था कि राजासाहबके हृदय-हारी और सरस व्यवहारका जिसमें सच्चा अनुराग भरा हुआ था। प्रभा पर कोई प्रभाव न पड़ता, प्रेमका प्रकाश अँधेरे हृदयको भी चमका देता है। प्रभा मनमें बहुत लज्जित होती। वह अपनेको इस निर्मल और विशुद्ध प्रेमके योग्य न पाती थी। इस पवित्र-प्रेमके बदलेमें उसे अपने कृत्रिम, रँगे हुए भाव प्रकट करते हुए मानसिक कष्ट होता था। जब तक कि राजासाहब उसके साथ रहते वह उनके गलेमें लताकी भाँति लपटी हुई घंटों प्रेमकी बातें किया करती। वह उनके साथ सुमनवाटिकामें चुहलें करती। उनके लिए फूलोंके हार गूंथती और उनके गलेमें हाथ डालकर कहती—'प्यारे! देखना ये फूल मुरझा न जावें, इन्हें सदा ताजा रखना।' वह चाँदनी रातमें उनके साथ नाव पर बैठ कर झीलकी सैर करती, और उन्हें प्रेमके राग सुनाती। यदि उन्हें बाहरसे आनेमें जरा भी देर हो जाती तो वह मीठा मीठा उलहना देती और उन्हें निर्दयी तथा निष्ठुर कहती। उनके सामने वह स्वयं हँसती उसकी आँखें हँसतीं और आँखोंका काजल हँसता था। किन्तु आह! जब वह अकेली होती उसका चंचल चित्त उड़कर उसी कुंडके तट पर जा पहुँचता, कुंडका वह नीला नीला पानी, उस पर तैरते हुए कमल, और मौलसरीकी वृक्षपंक्तियोंका सुन्दर दृश्य आँखोंके सामने आ जाता। उमा मुसकराती और नजाकतसे लचकती हुई आ पहुँचती, तब रसीले योगीकी मोहनी छबि आँखोंमें आ बैठती, और सितारके सुललित सुर गूँजने लगते—

कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।

तब वह एक दीर्घ निःश्वास लेकर उठ बैठती और बाहर निकल कर पिंजरेमें चहकते हुए पक्षियोंके कलरवम शान्ति प्राप्त करती। इस भाँति यह स्वप्न तिरोहित हो जाता।

[४]

इस तरह कई महीने बीत गये। एक दिन राजा हरिश्चन्द्र प्रभाको अपनी चित्रशालामें ले गये। उसके प्रथम भागमें ऐतिहासिक चित्र थे। सामने ही शूर वीर महाराणा प्रतापसिंहका चित्र नजर आया। मुखारविन्दसे वीरताकी ज्योति स्फुटित हो रही थी। तनिक और आगे बढ़कर दाहिनी ओर स्वामिभक्त जगमल, वीरवर सांगा, और दिलेर दुर्गादास विराजमान थे। बायीं ओर उदार भीमसिंह बैठे हुए थे। राणा प्रतापके सम्मुख महाराष्ट्रकेसरी वीर शिवाजीका चित्र था। दूसरे भागमें कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादापुरुषोत्तम राम विराजते थे। चतुर चित्रकारोंने चित्रनिर्माणमें अपूर्व कौशल दिखलाया था। प्रभाने प्रतापके पादपद्मोंको चूमा और वह कृष्णके सामने देर तक नेत्रोंमें प्रेम और श्रद्धाके आँसू भरे, मस्तक झुकाये खड़ी रही। उसके हृदय पर इस समय कलुषित प्रेमका भय खटक रहा था। उसे मालूम होता था यह उन महापुरुषोंके चित्र नहीं, उनकी पवित्र आत्मायें हैं। उन्हींके चरित्रसे भारतवर्षका इतिहास गौरवान्वित है। वे भारतके बहुमूल्य जातीय रत्न, उच्च कोटिके जातीय स्मारक, और गगनभेदी जातीय तुमुल-ध्वनि हैं। ऐसी उच्च आत्माओंके सामने खड़ी होते उसे संकोच होता था। आगे वही, दूसरा भाग सामने आया। यहाँ ज्ञानमय बुद्ध योगसाधनमें बैठे हुए देख पड़े। उनकी दाहिनी ओर शास्त्रज्ञ शंकर थे और बाँयें दार्शनिक दयानंद। एक ओर शान्तिपथगामी कबीर और भक्त

रामदास यथायोग्य खड़े थे। एक दीवार पर गुरुगोविंद अपने देश और जातिके नाम पर बलि चढ़नेवाले दोनों बच्चोंके साथ विराजमान थे। दूसरी दीवार पर वेदान्तकी ज्योति फैलानेवाले स्वामी रामतीर्थ और विवेकानंद विराजमान थे। चित्रकारोंकी योग्यता एक एक अवयवसे टपकती थी। प्रभाने इनके चरणों पर मस्तक टेका। वह उनके सामने सिर न उठा सकी। उसे अनुभव होता था, कि उनकी दिव्य आँखें उसके दूषित हृदयमें चुभी जाती हैं।

इसके बाद तीसरा भाग आया। यह प्रतिभाशाली कवियोंकी सभा थी। सर्वोच्च स्थान पर आदि कवि वाल्मीक और महर्षि वेदव्यास सुशोभित थे। दाहिनी ओर श्रृंगाररसके अद्वितीय कवि कालिदास थे, बाँयीं तरफ़ गंभीर भावोंसे पूण भवभूति। निकट ही भर्तृहरि अपने सन्तोषाश्रममें बैठे हुए थे।

दक्षिणकी दीवार पर राष्ट्रभाषा हिन्दीके कवियोंका सम्मेलन था। सहृदय कवि सूर, तेजस्वी तुलसी, सुकवि केशव और रसिक विहारी यथाक्रम विराजमान थे। सूरदाससे प्रभाका अगाध प्रेम था। वह समीप जाकर उनके चरणों पर मस्तक रखना ही चाहती थी कि अकस्मात् उन्हीं चरणोंके सम्मुख सिर झुकाये उसे एक छोटा सा चित्र देख पड़ा। प्रभा उसे देखकर चौंक पड़ी। यह वही चित्र था, जो उसके हृदयपट पर खिंचा हुआ था। वह खुलकर उसकी तरफ़ ताक न सकी। दबी हुई आँखोंसे देखने लगी। राजा हरिश्चन्द्रने मुसकराकर पूछा—इस व्यक्तिको तुमने कहीं देखा है?

इस प्रश्नसे प्रभाका हृदय काँप उठा। जिस तरह मृग-शावक व्याधके सामने व्याकुल हो इधर उधर देखता है उसी तरह प्रभा अपनी बड़ी बड़ी आँखोंसे दीवारकी ओर ताकने लगी। सोचने लगी

—क्या उत्तर दूँ! इसको कहाँ देखा है, उन्होंने यह प्रश्न मुझसे क्यों किया। कहीं ताड़ तो नहीं गये। हे नारायण, मेरी पत तुम्हारे हाथ है। क्यों कर इनकार करूँ। मुँह पीला हो गया। सिर झुका, क्षीण स्वरसे बोली:—

हाँ, ध्यान आता है कि कहीं देखा है।

हरिश्चन्द्रने कहा—कहाँ देखा?

प्रभाके सिरमें चक्कर सा आने लगा। बोली—शायद एक बार यह गाता हुआ मेरी वाटिकाके सामनेसे जा रहा था। उमाने बुलाकर इसका गाना सुना था।

हरिश्चन्द्रने पूछा—कैसा गाना था?

प्रभाके होश उड़े हुए थे। सोचती थी राजाके इन सवालोंमें जरूर कोई बात है। देखूँ आज लाज रहती है या नहीं। बोली—उसका गाना ऐसा बुरा न था।

हरिश्चन्द्रने मुसकराकर पूछा—क्या गाया था? प्रभाने सोचा, इस प्रश्नका उत्तर दे दूँ तो बाकी क्या रहता है। उसे विश्वास हो गया कि आज कुशल नहीं है। वह छतकी ओर निरखती हुई बोली—सूर-दासका कोई पद था।

हरिश्चन्द्रने कहा—यह तो नहीं—

कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।

प्रभाकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। सिर घूमने लगा। वह खड़ी न रह सकी। बैठ गई, और हताश होकर बोली—हाँ यही पद था। फिर उसने कलेजा मजबूत करके पूछा—आपको कैसे मालूम हुआ?

हरिश्चन्द्र बोले—वह योगी मेरे यहाँ अक्सर आया जाया करता है। मुझे भी उसका गाना पसन्द है। उसीने मुझे यह हाल बताया था, किन्तु वह तो कहता था कि राजकुमारीने मेरे गानोंको बहुत पसंद किया और पुनः आनेके लिए आदेश किया।

प्रभाको अब सच्चा क्रोध दिखानेका अवसर मिल गया। वह बिगड़ कर बोली—यह बिलकुल झूठ है। मैंने उससे कुछ नहीं कहा।

हरिश्चन्द्र बोले—यह तो मैं पहिले ही समझ गया था कि यह उन महाशयकी चालाकी है। डींग मारना गवैयोंकी आदत है। परन्तु इसमें तो तुम्हें इनकार नहीं कि उसका गाना बुरा न था?

प्रभा बोली—ना। अच्छी चीजको बुरा कौन कहेगा।

हरिश्चन्द्रने पूछा—फिर सुनना चाहो तो उसे बुलवाऊँ। सिरके बल दौड़ा आयेगा।

क्या उनके दर्शन फिर होंगे? इस आशासे प्रभाका मुखमंडल विकसित हो गया। परन्तु इन कई महीनोंकी लगातार कोशिशसे जिस बातको भुलानेमें वह किंचित् सफल हो चली थी, उसके फिर नवीन हो जानेका भय हुआ। बोली—इस समय गाना सुननेको मेरा जी नहीं चाहता।

राजाने कहा—यह मैं न मानूँगा, कि तुम और गाना नहीं सुनना चाहती, मैं उसे अभी बुलाये लाता हूँ।

यह कह कर राजा हरिश्चन्द्र तीरकी तरह कमरेसे बाहर निकल आये। प्रभा उन्हें रोक न सकी। वह बड़ी चिन्तामें डूबी खड़ी थी। हृदयमें खुशी और रंजकी लहरें बारी बारीसे उठती थीं। मुश्किलसे १० मिनट बीते होंगे, कि उसे सितारके मस्ताने सुरके साथ योगीकी रशीली तान सुनाई दी—

कर गये थोड़े दिनकी प्रीति।

वही हृदय-ग्राही राग था। वही हृदयभेदी प्रभाव, वही मनोहरता और वही सब कुछ जो मनको मोह लेता है। क्षण एकमें योगीकी मोहनी मूर्ति दिखाई दी। वही मस्तानापन, वही मतवाले नेत्र, वही नयनाभिराम देवताओंका सा स्वरूप। मुखमंडल पर मन्द मन्द मुसकान थी। प्रभाने उसकी तरफ़ सहमी हुई आँखोंसे देखा। एकाएक उसका हृदय उछल पड़ा। उसकी आँखोंके आगेसे एक पर्दा हट गया। प्रेमविह्वल हो, आँखोंमें प्रेमके आँसू भरे वह अपने पतिके चरणारविन्दो पर गिर पड़ी, और गद्‌गद कंठसे बोली—प्यारे, प्रियतम।

राजा हरिश्चन्द्रको आज सच्ची विजय प्राप्त हुई। उन्होंने प्रभाको उठाकर छातीसे लगा लिया। दोनों आज एक प्राण होगये। राजा हरिश्चन्द्रने कहा—जानती हो मैंने यह स्वांग क्यों रचा था। गानेका मुझे सदासे व्यसन है, और सुना कि तुम्हें भी इसका शौक़ है। तुम्हें अपना हृदय भेंट करनेसे प्रथम एक बार तुम्हारा दर्शन करना आवश्यक प्रतीत हुआ इसके लिए सबसे सुगम उपाय यही सूझ पड़ा।

प्रभाने अनुरागसे देख कर कहा—योगी बनकर तुमने जो कुछ पा लिया वह राजा रहकर कदापि न पा सकते। अब तुम मेरे पति भी हो और प्रियतम भी हो। पर तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया और मेरी आत्माको कलंकित किया। इसका उत्तरदाता कौन होगा?

अमावास्याकी रात्रि ।

[१]

दिवालीकी सन्ध्या थी । श्रीनगरके घूरों और खँड़हरोंके भी भाग्य चमक उठे थे । क़स्बेके लड़के, लड़कियाँ श्वेत थालियोंमें दीपक लिए मन्दिरकी ओर जा रही थीं । दीपोंसे अधिक उनके मुखारविन्द प्रकाश-मान थे । प्रत्येक गृह रोशनीसे जगमगा रहा था । केवल पण्डित देव-दत्तका सतघरा भवन अन्धकारमें काली घटाकी भाँति गम्भीर और भयङ्कर रूपमें खड़ा था । गम्भीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नतिके दिन भूले न थे । भयङ्कर इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे चिढ़ा रही थी । एक समय वह था जब कि ईर्षा भी उसे देख देख कर हाथ मलती थी, और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है । द्वार पर द्वारपालकी जगह अब मदार और एरण्डके वृक्ष खड़े थे । दीवानख़ानेमें एक मतङ्ग साँड़ अकड़ता था । ऊपरके घरोंमें जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहारी सङ्गीत गाती थीं; वहाँ आज जङ्गली कबूतरोंके मधुर स्वर सुनाई देते थे । किसी अँगरेज़ी मदरसेके विद्यार्थीके आचरणकी भाँति उसकी जड़ें हिल गई थीं । और उसकी दीवारें किसी विधवा स्त्रीके हृदयकी भाँति विदीर्ण हो रही थीं, पर समयको हम कुछ कह नहीं सकते, समयकी निन्दा व्यर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अदूरदर्शिताका फल था ।

अमावस्याकी रात्रि थी । प्रकाशसे पराजित होकर मानो अन्धकारने उसी विशाल भवनमें शरण ली थी । पण्डित देवदत्त अपने अर्द्ध-अन्ध-कारवाले कमरेमें मौन परन्तु चिन्तामें निमग्न थे । आज एक महीनेसे उनकी पत्नी 'गिरिजा' कि ज़िन्दगीको निर्दय कालने खिलवाड़ बना लिया है । पण्डितजी दरिद्रता और दुःखको भुगतनेके लिए तैयार थे ।

भाग्यका भरोसा उन्हें धैर्य्य बँधाता था। किन्तु यह नई विपत्ति सहनशक्तिसे बाहर थी। बेचारे दिनके दिन गिरिजाके सिरहाने बैठके उसके मुरझाये हुए मुखको देखकर कुढ़ते और रोते थे। गिरिजा जब अपने जीवनसे निराश होकर रोती तो वह उसे समझाते—गिरिजा रोवो मत, तुम शीघ्र अच्छी हो जाओगी।

पण्डित देवदत्तके पूर्वजोंका कारोबार बहुत विस्तृत था। वे लेन देन किया करते थे। अधिकतर उनके व्यवहार बड़े बड़े चकलेदारों और रजवाड़ोंके साथ थे। उस समय ईमान इतना सस्ता नहीं बिकता था। सादे पत्रों पर लाखोंकी बातें हो जाती थीं। मगर सन् ५७ ईस्वीके बलवेने कितनी ही रियासतों और राज्योंको मिटा दिया और उनके साथ तिवारियोंका यह अन्नधनपूर्ण परिवार भी मिट्टीमें मिल गया। ख़जाना लुट गया, बही खातें पंसारियोंके काम आये। जब कुछ शान्ति हुई, रियासतें फिर सँभलीं तो समय पलट चुका था। वचन लेखके अधीन हो रहा था, तथा लेखमें भी सादे और रंगीनका भेद होने लगा था।

जब देवदत्तने होश सँभाला तब उसके पास इस खँड़हरके अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति न थी। अब निर्वाहके लिए कोई उपाय न था। कृषिमें परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्यके लिए धन और बुद्धिकी आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं थी कि कहीं नौकरी करते, परिवारकी प्रतिष्ठा दान लेनेमें बाधक थी। अस्तु, सालमें दो तीन बार अपने पुराने व्यवहारियोंके घर बिन बुलाये पाहुनोंकी भाँति जाते और जो कुछ बिदाई तथा मार्ग-व्यय पाते उसी पर गुज़रान करते। पैतृक प्रतिष्ठाका चिह्न यदि कुछ शेष था तो वह पुरानी चिठी पत्रियोंका ढेर तथा हुंडियोंका पुलिन्दा, जिनकी स्याही भी उनके मन्द भाग्यकी भाँति फीकी पड़ गई थी। पण्डित देवदत्त उन्हें प्राणसे भी अधिक प्रिय

समझते थे । द्वितीयाके दिन जब घर घर लक्ष्मीकी पूजा होती है पण्डितजी ठाटबाटसे इन पुलिन्दोंकी पूजा करते । लक्ष्मी न सही, लक्ष्मीका स्मारक चिह्न ही सही । दूजका दिन पण्डितजीकी प्रतिष्ठाके श्राद्धका दिन था । इसे चाहे विडम्बना कहो, चाहे मूर्खता परन्तु श्रीमान् पण्डित महाशयको उन पत्रों पर बड़ा अभिमान था । जब गाँवमें कोई विवाद छिड़ जाता तो यह सड़े गले कागज़ोंकी सेना ही बहुत काम कर जाती और प्रतिवादी शत्रुको हार माननी पड़ती । यदि सत्तर पीढ़ियोंसे शस्त्रकी सूरत न देखने पर भी लोग क्षत्रिय होनेका अभिमान करते हैं तो पण्डित देवदत्तका उन लेखों पर अभिमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता जिनमें ७० लाख रुपयोंकी रकम छिपी हुई थी ।

[२]

वही अमावस्याकी रात्रि थी । किन्तु दीपमालिका अपनी अल्प जीवनी समाप्त कर चुकी थी । चारों और जुआरियोंके लिए यह शकुनकी रात्रि थी क्योंकि आजकी हार सालभरकी हार होती है । लक्ष्मीके आगमनकी धूम थी । कौड़ियों पर अशर्फियाँ लुट रही थीं । भट्टियोंमें शराबके बदले पानी बिक रहा था । पण्डित देवदत्तके अतिरिक्त क़स्बामें कोई ऐसा मनुष्य नहीं था जो दूसरोंकी कमाई समेटनेकी धुनमें न हो । आज भोरहीसे: गिरिजाकी अवस्था शोचनीय थी । विषमज्वर उसे एक एक क्षणमें मूर्छित कर रहा था । एकाएक उसने चौंक कर आँखें खोलीं और अत्यन्त क्षीण स्वरमें बोली—आज तो दिवाली है ।

देवदत्त ऐसा निराश हो रहा था कि गिरिजाको चैतन्य देख कर भी उसे आनन्द नहीं हुआ । बोला—हाँ आज दिवाली है । गिरिजाने आँसू भरी दृष्टिसे इधर उधर देख कर कहा—हमारे घरमें क्या दीप न जलेंगे ?

देवदत्त फूट फूट कर रोने लगा। गिरिजाने फिर उसी स्वरमें कहा देखो आज बरस बरसके दिन घर अँधेरा रह गया। मुझे उठा दो मैं भी अपने घरमें दीये जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्तके हृदयमें चुभी जाती थीं। मनुष्यकी अन्तिम घड़ी लालसाओं और भावनाओंमें व्यतीत होती है।

इस नगरमें लाला शङ्करदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। वे अपने प्राणसंजीवन औषधालयमें दवाओंके स्थान पर छापनेका प्रेस रक्खे हुए थे। दवाइयाँ कम बनती थीं किन्तु इश्तहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसोंका ढकोसला है। और पोलिटिकल एकानोमीके (अर्थशास्त्रके) मतानुसार इस विलासपदार्थसे जितना अधिक सम्भव हो टैक्स लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पड़े और मुफ्तमें दवा करावे। भारतवर्षकी यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा करानेसे हुई है। इसने मनुष्योंको असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भरसे नित्य उनके निकट दवा लेने आता था परन्तु वैद्यजी कभी उसकी ओर इतना ध्यान नहीं देते थे कि वह अपनी शोचनीय दशा प्रकट कर सके। वैद्यजीके हृदयके कोमल भाग तक पहुँचनेके लिए देवदत्तने बहुत कुछ हाथ पैर चलाये। वह आँखोंमें आँसू भरे आता, किन्तु वैद्यजीका हृदय ठोस था, उसमें कोमल भाग था ही नहीं।

वही अमावस्याकी डरावनी रात थी। गगनमण्डलमें तारे आधी रातके बीतने पर और भी अधिक प्रकाशित हो रह थे। मानो श्रीनगरकी बुझी हुई दीपावली पर कटाक्षयुक्त आनन्दके साथ मुसकरा रहे थे। देव-

दत्त एक बेचैनीकी दशामें गिरिजाके सिरहानेसे उठे और वैद्यजीके मकानकी ओर चले। वे जानते थे कि लालाजी बिना फ़ीस लिये कदापि नहीं आयेंगे किन्तु हताश होने पर भी आशा पीछा नहीं छोड़ती। देवदत्त क़दम आगे बढ़ाते चले जाते थे।

[३]

हकीमजी उस समय अपने रामबाण 'बिन्दु' का विज्ञापन लिखनेमें व्यस्त थे। उस विज्ञापनकी भाव-प्रद भाषा तथा आकर्षणशक्तिको देख कर कह नहीं सकते कि वे वैद्यशिरोमणि थे या सुलेखक विद्यावारिधि।

पाठक, आप उनके उर्दू विज्ञापनका साक्षात् दर्शन कर लें।

"नाज़रीन! आप जानते हैं कि मैं कौन हूँ? आपका ज़र्द चेहरा, आपका तने लागिर, आपका ज़रा सी मेहनतमें बेदम हो जाना, आपका लज्ज़ात दुनियाँसे महरूम रहना, आपकी ख़ाना तारीकी, यह सब इस सवालका नफ़ी मे जवाब देते हैं। सुनिए, मैं कौन हूँ। मैं वह शख्स हूँ जिसने इमराज़ इन्सानीको पर्दे दुनियाँसे ग़ायब कर देनेका बीड़ा उठाया है। जिसने इश्तिहारबाज़, जौ फ़रोश, गन्दुमनुमा बने हुए हकीमोंको बेख़ व बुनसे खोदकर दुनियाँको पाक कर देनेका अज्म बिल्जज्म कर लिया है। मैं वह हैरतअंगेज़ इन्सान ज़ईफुलबियान हूँ जो नाशादको दिलशाद, नामुरादको बामुराद, भगोड़ेको दिलेर, गीदड़को शेर बनाता हूँ। और यह किसी जादूसे नहीं, मंत्रसे नहीं, यह मेरी ईजाद करदा 'अमृतबिन्दु' के अदना करशमें हैं। अमृतबिन्दु क्या है इसे कुछ मैं ही जानता हूँ। महर्षि अगस्तने धन्वन्तरिके कानमें इसका नुस्ख़ा बतलाया था। जिस वक्त आप वी० पी० पार्सल खोलेंगे, आप पर उसकी हकीक़त रौशन हो जायगी! यह आबे हयात है। यह

मर्दानगीका जौहर, फ़रज़ानगीका अक्सीर, अक्लका मुम्बा, और ज़ेहनका सीक़ल है। अगर वर्षोंकी मुशायरावाज़ीने भी आपको शायर नहीं बनाया, अगर शाबाना रोज़के रटन्त पर भी आप इम्तहानमें कामयाब नहीं हो सके, अगर दल्लालोंकी खुशामद और मुवक्किलोंकी नाज़वर्दारीके बावजूद भी आप अहाते अदालतमें भूखे कुत्तेकी तरह चक्कर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड़ फाड़ चीखने और मेज़ पर हाथ पैर पटकने पर भी अपनी तकरीरसे कोई असर पैदा नहीं कर सकते, तो आप अमृतबिन्दुका इस्तेमाल कीजिए। इसका सबसे बड़ा फ़ायदा जो पहले ही दिन मालूम हो जायगा यह है कि आपकी आँखें खुल जायेंगी और आप फिर कभी इश्तिहारबाज़ हकीमोंके दामफ़रेबमें न फँसेंगे।"

वैद्यजी इस विज्ञापनको समाप्त कर उच्च स्वरसे पढ़ रहे थे। उनके नेत्रोंमें उचित अभिमान और आशा झलक रही थी कि इतनेमें देवदत्तने बाहरसे आवाज़ दी। वैद्यजी बहुत खुश हुए। रातके समय उनकी फ़ीस दुगुनी थी। लालटेन लिये हुए बाहर निकले तो देवदत्त रोता हुआ उनके पैरोंसे लिपट गया और बोला—वैद्यजी, इस समय मुझ पर दया कीजिये। गिरिजा अब कोई सायतकी पाहुनी है अब आप ही उसे बचा सकते हैं। यों तो मेरे भाग्यमें जो लिखा है वही होगा। किन्तु इस समय तनिक चलकर आप देख लें तो मेरे दिलकी दाह मिट जायगी। मुझे धैर्य्य हो जायगा कि उसके लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था मैंने किया। परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, किन्तु जब तक जीऊँगा आपका यश गाऊँगा और आपके इशारोंका गुलाम बना रहूँगा।

हकीमजीको पहले कुछ तरस आया किन्तु यह जुगुनूकी चमक थी जो शीघ्र ही स्वार्थके विशाल अन्धकारमें विलीन हो गई।

[४]

वही अमावस्याकी रात्रि थी। वृक्षों पर भी सन्नाटा छा गया था। जीतनेवाले अपने बच्चोंको नींदसे जगा जगा कर इनाम देते थे। हारनेवाले अपनी रुष्ट और क्रोधित स्त्रियोंसे क्षमाके लिए प्रार्थना कर रहे थे। इतनेमें घन्टोंके लगातार शब्द वायु और अन्धकारको चीरते हुए कानमें आने लगे। उनकी सुहावनी ध्वनि इस निस्तब्ध अवस्थामें अत्यन्त भली प्रतीत होती थी। यह शब्द समीप होते गये और अन्तमें पण्डित देवदत्तके समीप आकर उसके खंडहरोंमें डूब गये। पण्डितजी उस समय निराशाके अथाह समुद्रमें गोते खा रहे थे। शोकमें इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणोंसे भी अधिक प्यारी गिरिजाकी दवा दरपन कर सकें। क्या करे? इस निष्ठुर वैद्यको यहाँ कैसे लावें? ज़ालिम, मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तेरे इश्तहार छापता। तेरी दवाइयाँ कूटता। आज पण्डितजीको यह हासमय ज्ञान हुआ है कि सत्तर लाखकी चिट्ठी-पत्रियाँ इतनी कौड़ियोंके मोलकी भी नहीं। पैतृक प्रतिष्ठाका अहंकार अब आँखोंसे दूर हो गया। उन्होंने उस मखमली थैलेको सन्दूकसे बाहर निकाला और उन चिट्ठी-पत्रियोंको जो बापदादेकी कमाईका शेषांश थीं, और प्रतिष्ठाकी भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, वे एक एक करके दीयाको अर्पण करने लगे। जिस तरह सुख और आनन्दसे पालित शरीर चिताकी भेट हो जाता है, उसी प्रकार यह कागज़ी पुतलियाँ भी उस प्रज्वलित दीयाके धधकते हुए मुँहका ग्रास बनती थीं। इतनेमें किसीने बाहरसे पण्डितजीको पुकारा। उन्होंने चौंक कर सिर उठाया। वे नींदसे जागे, अँधेरेमें टटोलते हुए दरवाजे तक आये तो देखा कि कई आदमी हाथमें मशाल लिये हुए खड़े हैं और एक हाथी अपने सूँड़से उन एरण्डके वृक्षोंको उखाड़ रहा है, जो द्वार

पर द्वारपालोंकी भाँति खड़े थे। हाथी पर एक सुन्दर युवक बैठा हुआ है, जिसके सिर पर केसरिया रङ्गकी रेशमी पाग है। माथे पर अर्द्ध-चन्द्राकार चन्दन, भालेकी तरह तनी हुई नोकदार मोछें, मुखारविन्दसे प्रभाव और प्रकाश टपकता हुआ, कोई सरदार मालूम पड़ता था। उसका कलीदार अँगरखा और चुनावदार पैजामा, कमरमें लटकती हुई तलवार, और गर्दनमें सुनहरे कंठे और ज़ंजीर उसके सजीले शरीर पर अत्यन्त शोभा पा रहे थे। पण्डितजीको देखते ही उसने रकाब पर पैर रक्खा और नीचे उतर कर उनकी वन्दना की। उसके इस विनीत भावसे कुछ लज्जित होकर पण्डितजी बोले—आपका आगमन कहाँसे हुआ!

नवयुवकने बड़े नम्र शब्दोंमें जवाब दिया। उसके चेहरेसे भलमनसाहत बरसती थी—मैं आपका पुराना सेवक हूँ। दासका घर राजनगरमें है। मैं वहाँका जागीरदार हूँ। मेरे पूर्वजों पर आपके पूर्वजोंने बड़े अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्पदा है सब आपके पूर्वजोंकी कृपा और दयाका परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनोंसे आपका नाम सुना था। और मुझे बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंकी कांक्षा थी। आज वह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म सफल हुआ।

पण्डित देवदत्तकी आँखोंमें आँसू भर आये। पैतृक प्रतिष्ठाका अभिमान उनके हृदयका कोमल भाग था।

वह दीनता जो उनके मुख पर छाई हुई थी थोड़ी देरके लिए बिदा हो गई। वे गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूतमें तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपनेको उन लोगोंकी सन्तति कह सकूँ। इतनेमें नौक-

रोंने आँगनमें फ़र्श बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगीं, वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पंडितजीके मुखको इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रातःकालकी वायु फूलोंको खिला देती है। पंडितजीके पितामहने नवयुवक ठाकुरके पितामहको पचीस सहस्र रुपये कर्ज़ दिये थे। ठाकुर अब गयामें जाकर अपने पूर्वजोंका श्राद्ध करना चाहता था, इस लिए ज़रूरी था कि उनके ज़िम्मे जो कुछ ऋण हो उसकी एक एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुरको पुराने बही खातेमें यह ऋण दिखाई दिया। पचीसके अब पचहत्तर हज़ार हो चुके थे। वही ऋण चुका देनेके लिए ठाकुर २०० मीलसे आया था। धर्म ही वह शक्ति है जो अन्तःकरणमें ओजस्वी विचारोंको पैदा करती है। हाँ, इस विचारको कार्य्यमें लानेके लिए एक पवित्र और बलवान् आत्माकी आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं। अन्तमें ठाकुरने पूछा—आपके पास तो वे चिट्ठियाँ होंगी?

देवदत्तका दिल बैठ गया। वे सँभलकर बोले—सम्भवतः हों। कुछ कह नहीं सकते। ठाकुरने ला परवाहीसे कहा—ढूँढ़िये यदि मिल जाँय तो हम लेते जायँगे।

पंडित देवदत्त उठे। लेकिन हृदय ठंडा हो रहा था। शंका होने लगी कि कहीं भाग्य हरे बाग़ न दिखा रहा हो। कौन जाने वह पुर्ज़ा जलकर राख हो गया या नहीं। यह भी तो नहीं मालूम कि वह पहले भी था या नहीं। यदि न मिला तो रुपये कौन देता है। शोक! दूधका प्याला सामने आकर हाथसे छूटा जाता है। हे भगवन्! वह पत्री मिल जाय। हमने अनेक कष्ट पाये हैं। अब हम पर दया करो। इस प्रकार आशा और निराशाकी दशामें देवदत्त भीतर गये और दीयाके टिमटिमाते हुए प्रकाशमें बचे हुए पत्रोंको उलट पुलट

कर देखने लगे। वे उछल पड़े और उमङ्गमें भरे हुए पाग्लों भाँति आनन्दकी अवस्थामें दो तीन बार कूदे। तब दौड़ कर गिरिजाको गलेसे लगा लिया, और बोले—प्यारी, यदि ईश्वरने चाहा तो तू अब बच जायगी। इस उन्मत्ततामें उन्हें एकदम यह नहीं जान पड़ा कि 'गिरिजा' अब वहाँ नहीं है, केवल उसकी लोथ है।

देवदत्तने पत्रीको उठा लिया और द्वार तक वे इस तेज़ीसे आये मानों पाँवमें पर लग गये हैं। परन्तु यहाँ उन्होंने अपनेको रोका और हृदयमें आनन्दकी उमड़ती हुई तरंगको रोक कर कहा—यह लीजिये यह पत्री मिल गई। संयोगकी बात है, नहीं तो सत्तर लाखके कागज़ दीमकोंके आहार बन गये।

आकस्मिक सफलतामें कभी कभी सन्देह वाधा डालता है। जब ठाकुरने उस पत्रीके लेनेको हाथ बढ़ाया तो देवदत्तको सन्देह हुआ कि कहीं वह उसे फाड़ कर फेंक न दे। यद्यपि यह सन्देह निरर्थक था, किन्तु मनुष्य कमज़ोरियोंका पुतला है। ठाकुरने उनके मनके भावको ताड़ लिया। उसने बेपरवाहीसे पत्रीको लिया और मशालके प्रकाशमें देख कर कहा—अब मुझे पूर्ण विश्वास हुआ। यह लीजिये आपका रुपया आपके समक्ष है, आशीर्वाद दीजिये कि मेर पूर्वजोंकी मुक्ति हो जाय।

यह कह कर उसने अपने कमरसे एक थैला निकाला और उसमेंसे एक एक हज़ारके पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्तको दे दिये। पण्डितजीका हृदय बड़े वेगसे धड़क रहा था। नाटिका तीव्र गतिसे कूद रही थी। उन्होंने चारों ओर चौकन्नी दृष्टिसे देखा कि कहीं कोई दूसरा तो नहीं खड़ा है। और तब काँपते हुए हाथोंसे नोटोंको ले लिया। अपनी उच्चता प्रकट करनेकी व्यर्थ चेष्टामें उन्होंने नोटोंकी गणना भी नहीं की। केवल उड़ती हुई दृष्टिसे देख कर उन्हें समेटा और जेबमें डाल दिया।

हिलाकर बोले—गिरिजा, आँखें खोलो ! देखो ईश्वरने तुम्हारी विनती सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कैसी तबीयत है ?

किन्तु जब गिरिजा तनिक भी न मिनकी तब उन्होंने चादर उठा दी और उसके मुँहकी ओर देखा। हृदयसे एक करुणोत्पादक ठण्डी आह निकली। वे वहीं सर थाम कर बैठ गये। आँखोंसे शोणितकी बूँदें टपक पड़ीं। आह ! क्या यह सम्पदा इतने महँगे मूल्य पर मिली है ? क्या परमात्माके दरबारसे मुझे इस प्यारी जानका मूल्य दिया गया है ? ईश्वर, तुम खूब न्याय करते हो। मुझे गिरिजाकी आवश्यकता है, रुपयोंकी आवश्यकता नहीं। यह सौदा बड़ा महँगा है।

[६]

अमावस्याकी अँधेरी रात गिरिजाके अन्धकारमय जीवनकी भाँति समाप्त हो चुकी थी। खेतोंमें हल चलानेवाले किसान ऊँचे और सुहावने स्वरसे गा रहे थे। सर्दीसे काँपते हुए बच्चे सूर्य्य देवतासे बाहर निकलनेकी प्रार्थना कर रहे थे। पनघट पर गाँवकी अलबेली स्त्रियाँ जमा हो गई थीं। पानी भरनेके लिए नहीं, हँसनेके लिए। कोई घड़ेको कुएँमें डाले हुए अपनी पोपली सासकी नकल कर रही थी। कोई खम्भोंसे चिमटी हुई अपनी सहेलीसे मुसकुरा मुसकुरा कर प्रेम-रहस्यकी बातें करती थीं। बूढ़ी स्त्रियाँ रोते हुए पोतोंको गोदमें लिए अपनी बहुओंको कोस रहीं थीं कि घण्टे भर हुए अब तक कुएँसे नहीं लौटीं। किन्तु राजवैद्य लाला शङ्करदास अभी तक मीठी मीठी नींद ले रहे थे। खाँसते हुए बच्चे और कराहते हुए बूढ़े उनके औषधालयके द्वार पर जमा हो चले थे। इस भीड़-भम्भड़से कुछ दूर हट कर दो तीन सुन्दर किन्तु मुर्झाये हुए नवयुवक टहल रहे थे और वैद्यजीसे एकान्तमें कुछ बातें किया चाहते थे। इतनेमें पण्डित देवदत्त नंगे

सर, नंगे बदन, आँखे लाल, डरावनी सूरत, कागज़का एक पुलिन्दा लिये दौड़ते हुए आये और औषधालयके द्वार पर इतने ज़ोरसे हाँक लगाने लगे कि वैद्यजी चौंक पड़े और कहारको पुकार कर बोले कि—दरवाज़ा खोल दे । ये महात्मा बड़ी रात गये किसी बिरादरीकी पंचायतसे लौटे थे । उन्हें दीर्घ निद्राका रोग था, जो वैद्यजीके लगातार भाषण और फटकारकी ओषधियोंसे भी कम न होता था । आप ऐंठते हुए उठे और किवाड़ खोलकर हुक्का-चिलमकी चिन्तामें आग ढूँढ़ने चले गये । हकीमजी उठनेकी चेष्टा कर रहे थे कि सहसा देवदत्त उनके सम्मुख जाकर खड़े हो गये, और नोटोंका पुलिन्दा उनके आगे पटक कर बोले– वैद्यजी, ये पचहत्तर हज़ारके नोट हैं । यह आपका पुरस्कार और आपकी फीस है । आप चल कर गिरिजाको देख लीजिए, और ऐसा कुछ कीजिए कि वह केवल एक बार आँखें खोल दे । यह उसकी एक दृष्टि पर न्योछावर है । केवल एक दृष्टि पर ! आपको रुपये मनुष्यकी जानसे प्यारे हैं । वे आपके समक्ष हैं । मुझे गिरिजाकी एक चितवन इन रुपयोंसे कई गुनी प्यारी है ।

वैद्यजीने लज्जामय सहानुभूतिसे देवदत्तकी ओर देखा और केवल इतना कहा– मुझे अत्यन्त शोक है । मैं सदैवके लिए तुम्हारा अपराधी हूँ । किन्तु तुमने मुझे शिक्षा दे दी । ईश्वरने चाहा तो अब ऐसी भूल कदापि न होगी । मुझे शोक है । सच मुच महाशोक है ।

ये बातें वैद्यजीके अन्तःकरणसे निकली थीं

ममता ।

[१]

बाबू रामरक्षादास दिल्लीके एक ऐश्वर्यशाली खत्री थे, बहुतही ठाट-बाटसे रहनेवाले। बड़े बड़े अमीर उनके यहाँ नित्य आते जाते थे। वे आये हुओंका आदर सत्कार ऐसे अच्छे ढंगसे करते थे, कि इस बात-की धूम सारे महल्लेमें थी। नित्य उनके दरवाजे पर किसी न किसी बहानेसे इष्टमित्र एकत्र हो जाते, टेनिस खेलते, ताश उड़ता, हारमोनियमके मधुर स्वरोंसे जी बहलाते, चायपानीसे हृदय प्रफुल्लित करते, और अपने उदारशील मित्रके सद्व्यवहारकी प्रशंसा करते। बाबूसाहब दिनभरमें जितने रङ्ग बदलते उस पर 'पेरिस' की 'परियों' को भी ईर्षा हो सकती थी। कई बैंकोंमें उनके हिस्से थे। कई दूकानें थीं। किन्तु बाबू साहबको इतना अवकाश न था कि उनकी कुछ देखभाल करते। अतिथिसत्कार एक पवित्र धर्म्म है। वे सच्ची देशहितैषिताके उमङ्गसे कहा करते थे— अतिथिसत्कार आदिकालसे भारतवर्षके निवासियोंका एक प्रधान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतोंका आदरसम्मान करनेमें हम अद्वितीय हैं। हम इसीसे संसारमें मनुष्य कहलाने योग्य हैं। हम सब कुछ खो बैठे हैं, किन्तु जिस दिन हममें यह गुण शेष न रहेगा, वह दिन हिन्दू जातिके लिए लज्जा, अपमान और मृत्युका दिन होगा।

मिस्टर रामरक्षा जातीय आवश्यकताओंसे भी बेपरवाह न थे। वे सामाजिक और राजनीतिक कार्य्योंमें पूर्ण रूपसे योग देते थे। यहाँ तक कि प्रतिवर्ष दो बल्कि कभी कभी तीन वक्तृतायें अवश्य तैयार कर लेते। भाषणोंकी भाषा अत्यन्त उपयुक्त, ओजस्विनी और सर्वाङ्ग-

सुन्दर होती थीं। उपस्थित जन और इष्टमित्र उनके एक एक शब्द पर प्रशंसासूचक शब्दोंकी ध्वनि प्रकट करते, तालियाँ बजाते, यहाँ तक कि बाबूसाहबको व्याख्यानका क्रम स्थिर रखना कठिन हो जाता। व्याख्यान समाप्त होने पर उनके मित्र उन्हें गोदमें उठा लेते, और आश्चर्यचकित होकर कहते—तेरी भाषामें जादू है। इससे अधिक और क्या चाहिए? जातिकी ऐसी अमूल्य सेवा कोई छोटी बात नहीं है। नीची जातियोंके सुधारके लिए दिल्लीमें एक सोसायटी थी। बाबू साहब उसके सेक्रेटरी थे, और इस कार्य्यको असाधारण उत्साहसे पूर्ण करते थे। जब उनका बूढ़ा कहार बीमार हुआ और क्रिश्चियन मिशनके डाक्टरोंने उसकी शुश्रूषा की, जब उसकी विधवा स्त्रीने निर्वाहकी कोई आशा न देख कर क्रिश्चियन-समाजका आश्रय लिया, तब इन दोनों अवसरों पर बाबू साहबने शोकके रेज्यूलेशन पास किये। संसार जानता है कि सेक्रेटरीका काम सभायें करना और रेज्यूलेशन बनाना है। इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता।

मिस्टर रामरक्षाका जातीय उत्साह यहीं तक सीमाबद्ध न था। वे सामाजिक कुप्रथाओं तथा अन्ध विश्वासके प्रबल शत्रु थे। होलीके दिनोंमें जब कि महल्लेके चमार और कहार शराबसे मतवाले होकर फाग गाते और डफ़ बजाते हुए निकलते तो उन्हें बड़ा शोक होता। जातिकी इस मूर्खता पर उनकी आँखोंमें आँसू भर आते, और वे प्रायः इस कुरीतिका निवारण अपने हण्टरसे किया करते। उनके हण्टरमें, जातिहितैपिताकी उमङ्ग उनकी वक्तृतासे भी अधिक थी। यह उन्हींके प्रशंसनीय प्रयत्न थे, जिन्होंने मुख्य होलीके दिन दिल्लीमें हलचल मचा दी, फाग गानेके अपराधमें हज़ारों आदमी पुलिसके पंजेमें आ गये। सैकड़ों घरोंमें मुख्य होलीके दिन मुहर्रमका सा शोक फैल गया।

इधर उनके दरवाज़े पर हज़ारों पुरुष स्त्रियाँ अपना दुखड़ा रो रही थीं। इधर बाबू साहबके हितैषी मित्रगण उनकी इस उच्च और निस्पृह समाज-सेवा पर हार्दिक धन्यवाद दे रहे थे। सारांश यह कि बाबू साहबका यह जातीय-प्रेम और उद्योग, केवल बनावटी, सहृदयताशून्य, तथा फ़ैशनेबिल था। हाँ! यदि उन्होंने किसी सदुद्योगमें भाग लिया था तो वह सम्मिलित कुटुम्बका विरोध था। अपने पिताके देहान्तके पश्चात् वे अपनी विधवा माँसे अलग हो गये थे। इस जातीय-सेवामें उनकी स्त्री विशेष सहायक थी। विधवा माँ अपने बेटे और बहूके साथ नहीं रह सकती। इससे बहूकी स्वाधीनतामें विघ्न पड़ता है, और स्वाधीनतामें विघ्न पड़नेसे मन दुर्बल और मस्तिष्क शक्तिहीन हो जाता है। बहूको जलाना और कुढ़ाना सासकी आदत है। इस लिए बाबू रामरक्षा अपनी माँसे अलग हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने मातृ-ऋणका विचार करके दस हज़ार रुपये अपनी माँके नाम जमा कर दिये कि उसके व्याजसे उसका निर्वाह होता रहे। किन्तु बेटेके इस उत्तम आचरण पर माँका दिल ऐसा टूटा कि वह दिल्ली छोड़कर अयोध्या जा रही तबसे वहीं रहती है। बाबू साहब कभी कभी मिसेज़ रामरक्षासे छिपकर उनसे मिलने अयोध्या जाया करते थे, किन्तु वह दिल्ली आनेका कभी नाम न लेती। हाँ यदि कुशल क्षेमकी चिट्ठी पहुँचनेमें कुछ देर हो जाती तो विवश होकर समाचार पूछ लेती थी।

[२]

उसी महल्लेमें एक सेठ गिरधारीलाल रहते थे। उनका लाखोंका लेनदेन था। वे हीरे और रत्नोंका व्यापार करते थे। बाबू रामक्षाके, दूरके नातेमें, साढ़ू होते थे। पुराने ढंगके आदमी थे—प्रातःकाल यमुना स्नान करनेवाले, गायको अपने हाथोंसे झाड़ने पोंछनेवाले।

उनसे मिस्टर रामरक्षाका स्वभाव न मिलता था। परन्तु जब कभी रुपयोंकी आवश्यकता होती तो वे सेठ गिरधारीलालके यहाँसे बेखटके मँगा लिया करते। आपसका मामला था, केवल चार अंगुलके पत्र पर रुपया मिल जाता था, न कोई दस्तावेज, न स्टाम्प, न साक्षियोंकी आवश्यकता! मोटरकारके लिए १० हज़ारकी आवश्यकता हुई। वह वहाँसे आया। घुड़दौड़के लिए एक आस्ट्रेलियन घोड़ा डेढ़ हज़ारमें लिया। उसके लिए भी रुपया सेठजीके यहाँसे आया। धीरे धीरे कोई बीस हज़ारका मामला हो गया। सेठजी सरलहृदयके आदमी थे। समझते थे कि उसके पास दूकाने हैं। बैंकोंमें रुपया है। जब जी चाहेगा रुपया वसूल कर लेंगे, किन्तु जब दो तीन वर्ष व्यतीत हो गये, और सेठजीके तकाजोंकी अपेक्षा मिस्टर रामरक्षाकी माँगहीका आधिक्य रहा, तो गिरधारीलालको सन्देह हुआ। वह एक दिन रामरक्षाके मकान पर आये और सभ्य भावसे बोले—भाईसाहब, मुझे एक हुण्डीका रुपया देना है, यदि आप मेरा हिसाब कर दें तो बहुत अच्छा हो। यह कह कर हिसाबका कागज़ और उनके पत्र दिखलाये। मिस्टर रामरक्षा किसी गार्डन पार्टीमें सम्मिलित होनेके लिए तैयार थे। बोले—इस समय क्षमा कीजिये। फिर देख लूँगा, जल्दी क्या है।

गिरधारीलालको बाबू साहबकी रुखाई पर क्रोध आगया। वे रुष्ट होकर बोले—आपको जल्दी नहीं है मुझे तो है। दो सौ रुपये मासिककी मेरी हानि हो रही है। मिस्टर रामरक्षाने असंतोष प्रगट करते हुए घड़ी देखी। पार्टीका समय अब बहुत करीब था। वे बहुत विनीत भावसे बोले—भाई साहब, मैं बड़ी जल्दीमें हूँ। इस समय मेरे ऊपर कृपा कीजिये। मैं कल स्वयम् उपस्थित हूँगा।

सेठजी एक माननीय और धनसम्पन्न आदमी थे। वे रामरक्षाके इस कुरुचिपूर्ण व्यवहार पर जल गये। मैं इनका महाजन, इनसे धनमें, मानमें, ऐश्वर्य्यमें, बढ़ा हुआ। चाहूँ तो ऐसोंको नौकर रख लूँ। इनके दरवाज़े पर आऊँ, और आदरसत्कारकी जगह उल्टे ऐसा रूखा वर्ताव। वह हाथ बाँधे मेरे सामने न खड़ा रहे, किन्तु क्या मैं पान इलायची इत्र आदिसे भी सम्मान करनेके योग्य नहीं? वे तनक कर बोले—अच्छा तो कल हिसाब साफ़ हो जाय।

रामरक्षाने अकड़कर उत्तर दिया—हो जायगा।

रामरक्षाके गौरवशील हृदय पर सेठजीके इस वर्तावका प्रभाव कुछ कम खेदजनक न हुआ। इस काठके कुन्देने आज मेरी प्रतिष्ठा धूलमें मिला दी। वह मेरा अपमान कर गया। अच्छा तुम भी इसी दिल्लीमें रहते हो और हम भी यहीं हैं। निदान दोनोंमें गाँठ पड़ गई। बाबू साहबकी तबीयत ऐसी गिरी और हृदयमें ऐसी चिन्ता उत्पन्न हुई कि पार्टीमें जानेका ध्यान जाता रहा। वे देर तक इसी उलझनमें पड़े रहे। फिर सूट उतार दिया, और सेवकसे बोले—जा मुनीमजीको बुला ला। मुनीमजी आये। उनका हिसाब देखा गया, फिर बैंकोंका एकाउण्ट देखा। किन्तु ज्यों ज्यों इस घाटीमें उतरते गये त्यों त्यों अँधेरा बढ़ता गया। बहुत कुछ टटोला कुछ हाथ न आया। अन्तमें निराश होकर वे आरामकुर्सी पर पड़ गये, और उन्होंने एक ठण्डी साँस ले ली। दूकानोंका माल बिका, किन्तु रुपया बकायामें पड़ा हुआ था। कई ग्राहकोंकी दूकानें टूटगईं, और उन पर जो नक़द रुपया आया, वह डूब गया। कलकत्तेके आढ़तियोंसे जो माल मँगाया था, रुपये चुकानेकी तिथि सिर पर आपहुँची और यहाँ रुपया बसूल न हुआ। दूकानोंका यह हाल, बैंकोंका इससे भी बुरा। रातभर वे

इन्हीं चिन्ताओंमें करवटें बदलते रहे। अब क्या करना चाहिए। गिरधारीलाल सज्जन पुरुष है। यदि सारा कच्चा हाल उसे सुना दूँ तो अवश्य मान जायगा। किन्तु यह कष्टप्रद कार्य्य होगा कैसे ? ज्यों ज्यों प्रातःकाल समीप आता था त्यों त्यों उनका दिल बैठा जाता था। कच्चे विद्यार्थीकी जो दशा परीक्षाके सन्निकट आने पर होती है, वही हाल इस समय रामरक्षाका था। वे पलंगसे न उठे। मुँह हाथ भी न धोया, खानेकी कौन कहे। इतना जानते थे कि दुख पड़ने पर कोई किसीका साथी नहीं होता। इस लिए एक आपत्तिसे बचनेके लिए कहीं कई आपत्तियोंका बोझा न उठाना पड़े। मित्रोंको इन मामलोंकी खबर तक न दी। जब दोपहर हो गया और उनकी दशा ज्योंकी त्यों रही तो उनका छोटा लड़का बुलाने आया। उसने बापका हाथ पकड़ कर कहा—लालाजी आज काने क्यों नहीं तलते।

रामरक्षा—भूख नहीं है।

"क्या काया है ?"

"मनकी मिठाई।"

"और क्या काया है ?"

"मार।"

"किचने मारा ?"

"गिरधारीलालने।"

लड़का रोता हुआ घरमें गया, और इस मारकी चोटसे देर तक रोता रहा। अन्तमें तश्तरीमें रक्खी हुई दूधकी मलाईने उसकी इस चोट पर मरहमका काम दिया।

[३]

रोगीको जब जीनेकी आस नहीं रहती तो औषधि छोड़ देता है। मि० रामरक्षा जब इस गुत्थीको न सुलझा सके, तो चादर तानली और मुँह लपेट कर सो रहे। शामको एका एक उठकर सेठजीके यहाँ जा पहुँचे और कुछ असावधानीसे बोले—महाशय, मैं आपका हिसाब नहीं कर सकता।

सेठजी घबराकर बोले—क्यों ?

रामरक्षा—इस लिए कि मैं इस समय दरिद्र निहङ्ग हूँ। मेर पास एक कौड़ी भी नहीं है। आप अपना रुपया जैसे चाहें बसूल कर लें।

सेठ—यह आप कैसी बातें कहते हैं ?

रामरक्षा—बहुत सच्ची।

सेठ—दूकानें नहीं हैं ?

रामरक्षा—दूकानें आप मुफ्त ले जाइए।

सेठ—बैङ्कके हिस्से ?

रामरक्षा—वह कबके उड़ गये।

सेठ—जब यह हाल था तो आपको उचित नहीं था कि मेरे गले पर छुरी फेरते।

रामरक्षा—(अभिमानसे) मैं आपके यहाँ उपदेश सुननेके लिए नहीं आया हूँ।

यह कहकर मि० रामरक्षा वहाँसे चलदिये। सेठजीने तुरन्त नालिश कर दी। बीस हजार मूल, पाँच हजार ब्याज, डिगरी हो गई। मकान नीलाम पर चढ़ा। पन्द्रह हज़ारकी जायदाद पाँच हजारमें निकल गई। दस हज़ारका मोटर चार हज़ारमें बिका। सारी सम्पत्ति उड़ जाने पर कुल मिलाकर सोलह हज़ारसे अधिक रकम न खड़ी हो सकी। सारी

गृहस्थी नष्ट हो गई, तब भी दस हज़ारके ऋणी रह गये। मान बड़ाई धन दौलत सब मिट्टीमें मिल गये। बहुत तेज़ दौड़नेवाला मनुष्य प्रायः मुँहके वल गिर पड़ता है।

[४]

इस घटनाके कुछ दिनों पश्चात् दिल्ली म्यूनीसिपेल्टीके मेम्बरोंका चुनाव आरम्भ हुआ। इस पदके अभिलाषी वोटरोंकी पूजायें करने लगे। दलालोंके भाग्य उदय हुए। सम्मतियाँ मोतियोंके तौल बिकने लगीं। उम्मेद्वार मेम्बरोंके सहायक अपने अपने मुवक्किलके गुणगान करने लगे। चारों ओर चहल पहल मच गई। एक वकील महाशयने भरी सभामें अपने मुवक्किल साहबके विषयमें कहा—

"मैं जिस बुज़ुरुगका पैरोंकार हूँ वह कोई मामूली आदमी नहीं है। यह वह शख्स है जिसने अपने फ़रज़न्द अकबरकी शादीमें २५ हज़ार रुपया सिर्फ़ रक्स व सरूरमें सर्फ़ कर दिया था।"

उपस्थित जनोंमें प्रशंसाकी उच्च ध्वनि हुई।

एक दूसरे महाशयने अपने मुहालके वोटरोंके सम्मुख अपने मुवक्किलकी प्रशंसा यों की—

"मैं यह नहीं कहता कि आप सेठ गिरधारीलालको अपना मेम्बर बनाइये। आप अपना भला बुरा स्वयम् समझते हैं। और यह भी नहीं है कि सेठजी मेरे द्वारा अपनी प्रशंसाके भूखे हों। मेरा निवेदन केवल यही है कि आप जिसे मेम्बर बनायें, पहले उसके गुणदोषोंका भली भाँति परिचय लेलें। दिल्लीमें केवल एक मनुष्य है जो गत १० वर्षोंसे आपकी सेवा कर रहा है। केवल एक आदमी है कि जिसने पानी पहुँचाने और स्वच्छताके प्रबन्धोंमें हार्दिक धर्म्मभावसे सहायता दी है। केवल एक पुरुष है जिसको श्रीमान् वायसरायके दरबारमें

कुर्सीपर बैठनेका अधिकार प्राप्त है और आप सब महाशय उसे जानते हैं।"

उपस्थित जनोंने तालियाँ बजाईं।

सेठ गिरधारीलालके महल्लेमें उनके एक प्रतिवादी थे। नाम था मुंशी फ़ैज़ुल रहमान ख़ाँ। बड़े ज़मींदार और प्रसिद्ध वकील थे। बाबू रामरक्षाने अपनी दृढ़ता, साहस, बुद्धिमत्ता, और मृदु भाषणसे मुन्शीजी साहबकी सेवा करनी आरम्भ की। सेठजीको परास्त करनेका यह अपूर्व अवसर हाथ आया। वे रात और दिन इसी धुनमें रहते। उनकी मीठी और रोचक बातोंका प्रस्ताव उपस्थित जनों पर बहुत ही अच्छा पड़ता। एक बार आपने असाधारण श्रद्धाकी उमङ्गमें आकर कहा—मैं डंकेकी चोट कहता हूँ कि मुंशी फ़ैज़ुल रहमानसे अधिक योग्य आदमी आपको दिल्लीमें न मिल सकेगा। यह वह आदमी है जिसकी गज़लों-पर कविजनोंमें वाह वाह मच जाती है। ऐसे श्रेष्ठ आदमीकी सहायता करना मैं अपना जातीय और सामाजिक धर्म्म समझता हूँ। अत्यन्त शोकका विषय है कि बहुतसे लोग इस जातीय और पवित्र कामको व्यक्तिगत लाभका साधन बनाते हैं। धन और वस्तु है, श्रीमान् वाय-सरायके दरबारमें प्रतिष्ठित होना और वस्तु। किन्तु सामाजिक सेवा, जातीय चाकरी और ही चीज़ है और वह मनुष्य जिसका जीवन व्याजप्राप्ति, बेईमानी, कठोरता तथा निर्दयता और सुखविलासमें व्यतीत होता हो वह इस सेवाके योग्य कदापि नहीं है।

[५]

सेठ गिरधारीलाल इस अन्योक्ति-पूर्ण भाषणका हाल सुनकर क्रोधसे आग हो गये। मैं बेईमान हूँ! व्याजका धन खानेवाला हूँ। विषयी हूँ। कुशल हुई जो तुमने मेरा नाम नहीं लिया। किन्तु अब भी तुम मेरे

हाथमें हो, मैं अब भी तुम्हें जिस तरह चाहूँ नचा सकता हूँ। खुशामदियोंने आग पर तेल डाला। इधर रामरक्षा अपने काममें तत्पर रहे। यहाँ तक कि वोटिंग डे आ पहुँचा। मिस्टर रामरक्षाको अपने उद्योगमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई थी। आज वे बहुत प्रसन्न थे। आज गिरधारीलालको नीचा दिखाऊँगा। आज उसको जान पड़ेगा कि धन संसारके सब पदार्थोंको इकट्ठा नहीं कर सकता। जिस समय फ़ैज़ुल रहमानके वोट अधिक निकलेंगे और मैं तालियाँ बजाऊँगा, उस समय गिरधारीलालका चेहरा देखने योग्य होगा। मुँहका रंग बदल जायगा, हवाइयाँ उड़ने लगेंगीं, आँखें न मिला सकेगा। शायद फिर मुझे मुँह न दिखा सके। इन्हीं विचारोंमें मग्न रामरक्षा शामको टाउन हालमें पहुँचे। उपस्थित सभ्योंने बड़ी उमङ्गके साथ उनका स्वागत किया। थोड़ी देर बाद 'वोटिङ्ग' आरम्भ हुआ। मेम्बरी मिलनेकी आशा रखनेवाले महानुभाव अपने अपने भाग्यका अन्तिम फल सुननेके लिए आतुर हो रहे थे। छः बजे चेयरमैनने फ़ैसला सुनाया। सेठजीकी हार हो गई। फ़ैज़ुल रहमानने मैदान मार लिया। रामरक्षाने हर्षके आवेगमें टोपी हवामें उछाल दी और वे स्वयं भी कई बार उछल पड़े। महल्लेवालोंको अचम्भा हुआ। चाँदनी चौकसे सेठजीको हटाना मेरुको स्थानसे उखाड़ना था। सेठजीके चेहरेसे रामरक्षाको जितनी आशायें थीं वे सब पूरी हो गईं। उनका रंग फीका पड़ गया था। वे खेद और लज्जाकी मूर्ति बने हुए थे। एक वकील साहबने उनसे सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा—"सेठजी, मुझे आपकी हारका बहुत बड़ा शोक है। मैं जानता कि यहाँ खुशीके बदले रंज होगा तो कभी यहाँ न आता। मैं तो केवल आपके ख्यालसे यहाँ आया था।" सेठजीने बहुत रोकना चाहा परंतु आँखोंमें आँसू डबडबा ही गये। वे निस्पृह बन-

नेका व्यर्थ प्रयत्न करके बोले—"वकील साहब, मुझे इसकी कुछ चिन्ता नहीं। कौन रियासत निकल गई। व्यर्थ उलझन, चिन्ता, तथा झंझट रहती थी। चलो अच्छा हुआ। गला छूटा। अपने काममें हरज होता था। सत्य कहता हूँ, मुझे तो हृदयसे प्रसन्नता ही हुई। यह काम तो बेकामवालोंके लिये है। घर न बैठे रहे यही बेगार की। मेरी मूर्खता थी कि मैं इतने दिनों तक आँखे बन्द किये बैठा रहा।" परन्तु सेठजीकी मुखाकृतिने इन विचारोंका प्रमाण न दिया। मुखमण्डल हृदयका दर्पण है इसका निश्चय अलबत्ता हो गया।

किन्तु बाबू रामरक्षा बहुत देर तक इस आनन्दका मज़ा न लूटने पाये और न सेठजीको बदला लेनेके लिए बहुत देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। सभा विसर्जित होते ही जब बाबू रामरक्षा सफलताके उमंगमें ऐंठते, मोंछ पर ताव देते और चारों ओर गर्वकी दृष्टि डालते हुए बाहर आये, तो दीवानीके तीन सिपाहियोंने आगे बढ़कर उन्हें गिरफ्तारीका वारंट दिखा दिया। अबकी बाबू रामरक्षाके चेहरेका रंग उतर जानेकी, और सेठजीके इस मनोवांछित दृश्यसे आनन्द उठानेकी बारी थी। गिरधारीलालने आनन्दके उमङ्गमें तालियाँ तो न बजाईं परन्तु मुसकुरा कर मुहँ फेर लिया। रंगमें भंग पड़ गया।

आज इस विजयके उपलक्षमें मुंशी फ़ैज़ुल रहमानने पहलेहीसे एक बड़े समारोहसे गार्डनपार्टीकी तैयारियाँ की थीं। मिस्टर रामरक्षा इसके प्रबन्धकर्ता थे। आज की 'आफ्टर डिनर' स्पीच उन्होंने बड़े परिश्रमसे तैयार की थीं, किन्तु इस वारंटने सारी कामनाओंका सत्यानाश कर दिया। यों तो बाबू साहबके मित्रोंमें ऐसा कोई भी न था जो १० हज़ार रुपयेकी ज़मानत दे देता, अदा कर देनेका तो ज़िक्र ही क्या। किन्तु कदाचित् ऐसा होता भी तो सेठजी अपनेको भाग्यहीन

समझते। दस हज़ार रुपया और म्यूनिसपैलिटीकी प्रतिष्ठित मेम्बरी खोकर उन्हें इस समय यह हर्ष प्राप्त हुआ था।

मिस्टर रामरक्षाके घर पर ज्योंही यह ख़बर पहुँची, कुहराम मच गया। उनकी स्त्री पछाड़ खा कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब कुछ होशमें आई तो रोने लगी, और रोनेसे छुट्टी मिली तो उसने गिरधारीलालको कोसना आरम्भ किया। देवी देवता मनाने लगी। उन्हें रिशवतें देनेपर तैयार हुई कि वे गिरधारीलालको किसी प्रकार निगल जायँ। इस बड़े भारी काममें वह गंगा और यमुनासे सहायता माँग रही थी, प्लेग और विसूचिकाकी खुशामदें कर रही थी, कि ये दोनों मिलकर इस गिरधारीलालको हड़प ले जायँ। किन्तु गिरधारीलालका कोई दोष नहीं। दोष तुम्हारा है। बहुत अच्छा हुआ। तुम इसी पूजाके देवता थे। क्या अब दावतें न खिलाओगे? मैंने तुम्हें कितना समझाया, रोई, रूठी, बिगड़ी, किन्तु तुमने एक न सुनी। गिरधारीलालने बहुत अच्छा किया। तुम्हें शिक्षा तो मिल गई। किन्तु तुम्हारा भी दोष नहीं, यह सब आग मैंने लगाई है। मखमली स्लीपरोंके बिना मेरे पाँव नहीं उठते थे। बिना जड़ाऊ कड़ोंके मुझे नींद न आती थी। सेजगाड़ी मेर ही लिए मँगवाई गई। अँगरेजी पढ़ानेके लिए मेम साहबाको मैंने ही रक्खा। ये सब काँटे मैंने ही बोये हैं।

मिसेज़ रामरक्षा बहुत देर तक इन्हीं विचारोंमें डूबी रही। जब रातभर करवटें बदलनेके बाद वह सबेरे उठी तो उसके विचार चारों ओरसे ठोकरें खाकर केवल एक ही केन्द्र पर जम गये थे। "गिरिधारीलाल बड़ा बदमाश है और घमण्डी है। मेरा सब कुछ लेकर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। इतना भी उस निर्दई कसाईसे न देखा गया।" भिन्न भिन्न प्रकारके विचारोंने मिलकर एक रूप धारण किया

और क्रोधाग्निको दहकाकर प्रबल कर दिया। ज्वालामुखी शीशेमें जब सूर्य्यकी किरणें एकत्र होती हैं तब अग्नि प्रकट हो जाती है। इस स्त्री-के हृदयमें रह रह कर क्रोधकी एक असाधारण लहर उत्पन्न होती थी। बच्चेने मिठाईके लिए हठ किया, इस पर बरस पड़ी। महरीने चौका बरतन करके चूल्हेमें आग जला दी, उसके पीछे पड़ गई। मैं तो अपने दुःखोंको रो रही हूँ, इस चुड़ैलको रोटियोंकी धुन सवार है। निदान ९ बजे उससे न रहा गया। उसने यह पत्र लिख कर अपने हृदयकी ज्वाला ठंडी की—

"सेठजी तुम्हें अब अपने धनके घमंडने अंधा कर दिया है। किन्तु किसीका घमंड इसी तरह सदा नहीं रह सकता। कभी न कभी सिर अवश्य नीचा होता है। अफ़सोस कि कल शामको जब तुमने मेरे प्यारे पतिको पकड़वाया है, मैं वहाँ मौजूद न थी; नहीं तो अपना और तुम्हारा रक्त एक कर देती। तुम धनके मदमें भूले हुए हो। मैं उसी दम तुम्हारा नशा उतार देती। एक स्त्रीके हाथों अपमानित हो कर तुम फिर किसीको मुँह दिखाने लायक़ न रहते। अच्छा इसका बदला तुम्हें किसी न किसी तरह ज़रूर मिल जायगा। मेरा कलेजा उस दिन ठण्डा होगा जब तुम निर्वंश हो जाओगे और तुम्हारे कुलका नाम मिट जायगा।"

सेठजीने यह फटकार पढ़ी तो वे क्रोधसे आग हो गये। यद्यपि क्षुद्रहृदयके मनुष्य न थे; परन्तु क्रोधके आवेगमें सौजन्यका चिह्न भी शेष नहीं रहता। यह ध्यान न रहा कि यह एक दुखिनी अबलाकी क्रन्दन-ध्वनि है। एक सताई हुई स्त्रीका मानसिक विकार है। उसकी धनहीनता और विवशता पर उन्हें तनिक भी दया न आई। वे मरे हुएको मारनेके उपाय सोचने लगे।

[६]

इसके तीसरे दिन सेठ गिरधारीलाल पूजाके आसन पर बैठे हुए थे कि महराने आकर कहा—सरकार कोई स्त्री आपसे मिलने आई है। सेठजीने पूछा—कौन स्त्री है? महराने कहा—सरकार, मुझे क्या मालूम। लेकिन है कोई भली मानुस। रेशमी साड़ी पहने हुए है। हाथोंमें सोनेके कड़े हैं। पैरोंमें टाटके स्लीपर। बड़े घरकी स्त्री जान पड़ती है।

यों साधारणतः सेठजी पूजाके समय किसीसे नहीं मिलते थे। चाहे कैसा ही आवश्यक काम क्यों न हो, ईश्वरोपासनामें सामयिक बाधाओंको घुसने नहीं देते थे। किन्तु ऐसी दशामें जब कि बड़े घरकी स्त्री मिलनेके लिए आवे, तो थोड़ी देरके लिए पूजामें विलम्ब करना निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। ऐसा विचार करके वे नौकरसे बोले—उन्हें बुला लाओ।

जब वह स्त्री आई तो सेठजी स्वागतके लिए उठ कर खड़े हो गये। तत्पश्चात् अत्यन्त कोमल वचनोंसे कारुणिक शब्दोंमें बोले—माता, कहाँसे आना हुआ? और जब यह उत्तर मिला कि वह अयोध्यासे आई है, तो आपने उसे फिरसे दण्डवत की, और चीनी तथा मिश्रीसे भी अधिक मधुर और नवनीतसे अधिक चिकने शब्दोंमें कहा—अच्छा! आप श्रीअयोध्याजीसे आ रही हैं! उस नगरीका क्या कहना। देवताओंकी पुरी है, बड़े भाग थे कि आपके दर्शन हुए। यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ? स्त्रीने उत्तर दिया—घर तो मेरा यहीं है। सेठजीका मुख पुनः मधुरताका चित्र बना। वे बोले—अच्छा तो मकान आपका इसी शहरमें है? तो आपने मायाजंजालको त्याग दिया? यह तो मैं पहले ही समझ गया था! ऐसी पवित्र

आत्मायें संसारमें बहुत थोड़ी हैं। ऐसी देवियोंके दर्शन दुर्लभ होते हैं। आपने मुझे दर्शन दिये, बड़ी कृपा की। मैं इस योग्य नहीं जो आप जैसी विदुषियोंकी कुछ सेवा कर सकूँ। किन्तु जो काम मेरे योग्य हो—जो कुछ मेरे किये हो सकता हो—उसके करनेके लिए मैं सब भाँतिसे तैयार हूँ। यहाँ सेठ साहूकारोंने मुझे बहुत बदनाम कर रक्खा है। मैं सबकी आँखोंमें खटकता हूँ। उसका कारण सिवा इसके और कुछ नहीं कि जहाँ वे लोग लाभ पर ध्यान रखते हैं, वहाँ मैं भलाई पर ध्यान रखता हूँ। यदि कोई बड़ी अवस्थाका वृद्ध मनुष्य मुझसे कुछ कहने सुननेके लिए आता है, तो विश्वास मानो, मुझसे उसका वचन टाला नहीं जाता। कुछ तो बुढ़ापेका विचार, कुछ उसके दिल टूट जानेका डर, कुछ यह खयाल कि कहीं वह विश्वासघातियोंके फन्देमें न फँस जावे मुझे उसकी इच्छाओंकी पूर्तिके लिए विवश कर देता है। मेरा यह सिद्धान्त है कि अच्छी जायदाद और कम व्याज। किन्तु इस प्रकारकी बातें आपके सामने करना व्यर्थ है। आपसे तो घरका मामला है। मेरे योग्य जो कुछ कार्य्य हो इसके लिए मैं सिर आँखोंसे तैयार हूँ।

वृद्ध स्त्री—मेरा काम आपहीसे हो सकता है।

सेठजी—(प्रसन्न होकर) बहुत अच्छा, आज्ञा दो।

स्त्री—मैं आपके सामने भिखारिनी बन कर आई हूँ। आपको छोड़ कर कोई मेरा सवाल पूरा नहीं कर सकता।

सेठजी—कहिए, कहिए।

स्त्री—आप रामरक्षाको छोड़ दीजिए।

सेठजीके मुखका रंग उतर गया। सारे हवाई क़िले जो अभी अभी तैयार हुए थे, गिर पड़े। वे बोले—उसने मेरी बहुत हानि की है। उसका घमंड तोड़ डालूँगा, तब छोड़ूँगा।

स्त्री—तो क्या कुछ मेरे बुढ़ापेका, मेरे हाथ फैलानेका, कुछ अपनी बड़ाईका विचार न करोगे? बेटा, ममता बुरी होती है। संसारसे नाता टूट जाय, धन जाय, धर्म जाय, किन्तु लड़केका स्नेह हृदयसे नहीं जाता। संयोग सब कुछ कर सकता है किन्तु बेटेका प्रेम माँके हृदयसे नहीं निकल सकता। इस पर हकिमका, राजाका, यहाँ तक कि ईश्वरका भी बस नहीं है। तुम मुझ पर तरस खाओ। मेरे लड़केकी जान छोड़ दो। तुम्हें बड़ा यश होगा। मैं जब तक जीऊँगी, तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी।

सेठजीका हृदय कुछ पसीजा। पत्थरकी तहमें पानी रहता है। किन्तु तत्काल ही उन्हें मिसेज़ रामरक्षाके उस पत्रका ध्यान आ गया। वे बोले—मुझे रामरक्षासे कोई उतनी शत्रुता नहीं थी। यदि उन्होंने मुझे न छेड़ा होता तो मैं न बोलता। आपके कहनेसे मैं अब भी उनका अपराध क्षमा कर सकता हूँ। परंतु उनकी बीबी साहबाने जो पत्र मेरे पास भेजा है, उसे देखकर शरीरमें आग लग जाती है। दिखाऊँ आपको? रामरक्षाकी माँने पत्र लेकर पढ़ा तो उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे बोलीं—बेटा, उस स्त्रीने मुझे बहुत दुःख दिया है। उसने मुझे देशसे निकाल दिया। उसका मिजाज और ज़बान उसके वशमें नहीं। किन्तु इस समय उसने जो गर्व दिखाया है उसका तुम्हें खयाल नहीं करना चाहिए। तुम इसे भुला दो। तुम्हारा देश देशमें नाम है। यह नेकी तुम्हारे नामको और भी फैला देगी। मैं तुमसे प्रण करती हूँ कि सारा समाचार रामरक्षासे लिखवाकर किसी अच्छे

समाचारपत्रमें छपवा दूँगी। रामरक्षा मेरा कहना नहीं टालेगा। तुम्हारे इस उपकारको वह कभी न भूलेगा। जिस समय ये समाचार सम्वादपत्रोंमें छपेंगे उस समय हज़ारों मनुष्योंको तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा होगी। सरकारमें तुम्हारी बड़ाई होगी। और मैं सच्चे हृदयसे कहती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें कोई न कोई पदवी मिल जायगी। रामरक्षाकी अँगरेज़ोंसे बहुत मित्रता है, वे उसकी बात कभी न टालेंगे।

सेठजीके हृदयमें गुदगुदी पैदा हो गई। यदि इस व्यवहारसे वह पवित्र और माननीय स्थान प्राप्त हो जाय, जिसके लिए हज़ारों ख़र्च किये, हज़ारों डालियाँ दीं, हज़ारों अनुनय-विनय कीं, हजारों खुशामदें कीं, खानसामोंकी झिड़कियाँ सहीं, बँगलोंके चक्कर लगाये। अहा! इस सफलताके लिए ऐसे ऐसे कई हज़ार मैं ख़र्च कर सकता हूँ। निस्सन्देह मुझे इस काममें रामरक्षासे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। किन्तु इन विचारोंको प्रकट करनेसे क्या लाभ? उन्होंने कहा—माता, मुझे नाम नमूदकी बहुत चाह नहीं है। बड़ोंने कहा है—'नेकी कर और दरियामें डाल।' मुझे तो आपकी बातका खयाल है। पदवी मिले तो लेनेसे इन्कार नहीं, न मिले तो उसकी तृष्णा भी नहीं। परंतु यह तो बताइये कि मेरे रुपयोंका क्या प्रबन्ध होगा? आपको माऌम होगा कि मेरे दस हज़ार रुपये जाते हैं।

रामरक्षाकी माँने कहा—तुम्हारे रुपयोंकी ज़मानत मैं करती हूँ। यह देखो बंगाल बंककी पासबुक है। उसमें मेरा दस हज़ार रुपया जमा है। उस रुपयेसे तुम रामरक्षाको कोई व्यवसाय करा दो। तुम उस दूकानके मालिक रहोगे, रामरक्षाको उसका मैनेजर बना देना। जबतक वह तुम्हारे कहेपर चले तबतक निभाना। नहीं तो दूकान तुम्हारी है। मुझे उसमेंसे कुछ नहीं चाहिए। मेरी खोज खबर लेनेवाला ईश्वर

है। रामरक्षा अच्छी तरह रहे, इससे अधिक मुझे और कुछ न चाहिए। यह कह कर पासबुक सेठजीको दे दी। माँके इस अथाह प्रेमने सेठजीको विह्वल कर दिया। पानी उबल पड़ा और पत्थर उसके नीचे ढक गया। ऐसे पवित्र दृश्य देखनेके लिए जीवनमें कम अवसर मिलते हैं। सेठजीके हृदयमें परोपकारकी एक लहर सी उठी। उनकी आँखें डबडबा आईं। जिस प्रकार पानीके बहावसे कभी कभी बाँध टूट जाता है, उसी प्रकार परोपकारकी इस उमंगने स्वार्थ और मायाके बाँधको तोड़ दिया। वे पासबुक वृद्धा स्त्रीको वापस देकर बोले—माता, यह अपनी किताब लो। मुझे अब अधिक लज्जित न करो। यह देखो रामरक्षाका नाम बहीसे उड़ा देता हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैंने अपना सब कुछ पा लिया। आज तुम्हारा रामरक्षा तुमको मिल जायगा।

* * * *

इस घटनाके दो वर्ष उपरान्त टाऊन-हालमें फिर एक बड़ा जलसा हुआ। बैंड बज रहा था। झंडियाँ और ध्वजायें वायुमण्डलमें लहरा रही थीं। नगरके सभी माननीय पुरुष उपस्थित थे। लैंडो, फीटन, और मोटरोंसे इहाता भरा हुआ था। एकाएक मुश्की घोड़ोंकी फीटनने इहातेमें प्रवेश किया। सेठ गिरधारीलाल बहुमूल्य वस्त्रोंसे सजे हुए उसमेंसे उतरे। उनके साथ एक फैशनेबल नवयुवक अँगरेज़ी सूट पहने मुसकुराता हुआ उतरा। ये मिस्टर रामरक्षा थे। वे अब सेठजीकी एक खास दूकानके मैनेजर हैं। केवल मैनेजर ही नहीं किन्तु उन्हें मैनेजिङ्ग प्रोप्राइटर समझना चाहिए। दिल्लीदरबारमें सेठजीको भी रायबहादुरका पद मिला है। आज डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट नियमानुसार इसकी घोषणा करेंगे और नगरके माननीय पुरुषोंकी ओरसे सेठजीको धन्यवाद देनेके लिए यह बैठक हुई है। सेठजीकी

ओरसे धन्यवादका वक्तव्य मिस्टर रामरक्षा करेंगे । जिन लोगोंने उनकी वक्तृतायें सुनी हैं, वे बहुत उत्सुकतासे उस अवसरकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

बैठक समाप्त होने पर जब सेठजी रामरक्षाके साथ अपने भवन पर पहुँचे तो मालूम हुआ कि आज वही वृद्धा स्त्री फिर उनसे मिलने आई है । सेठजी दौड़कर रामरक्षाकी माँके चरणोंसे लिपट गये । उनका हृदय इस समय नदीकी भाँति उमड़ा हुआ था ।

'रामरक्षा एण्ड फ्रैंड्स' चीनी बनानेका कारखाना बहुत उन्नतिपर है । रामरक्षा अब भी उसी ठाटबाटसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं । किन्तु पार्टियाँ कम देते हैं, और दिन भरमें तीनसे अधिक सूट नहीं बदलते । वे अब उस पत्रको जो उनकी स्त्रीने सेठजीको लिखा था, संसारकी एक बहुत बहुमूल्य वस्तु समझते हैं । और मिसेज़ रामरक्षाको भी अब सेठजीके नाम मिटानेकी अधिक चाहना नहीं है । क्योंकि अभी हालमें जब उनके लड़का पैदा हुआ था तो मिसेज़ रामरक्षाने अपना सुवर्णकंकण धायको उपहार दिया था और मनों मिठाई बाँटी थी ।

यह सब हो गया, किन्तु वह बात जो अब होनी थी वह न हुई । रामरक्षाकी माँ अब भी अयोध्या रहती है और अपनी पुत्रवधूकी सूरत नहीं देखना चाहती ।

पछतावा।

[१]

पंडित दुर्गानाथ जब कालेजसे निकले तो उन्हें जीवन-निर्वाहकी चिन्ता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक पुरुष थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणतः सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरोंके साथ भलाई और सदाचरणका भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालयमें क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह तो हो सकता है किन्तु सर्व साधारणसे कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालतमें प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपनेको पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस–विभागमें दीनपालन और परोपकारके लिए बहुतसे अवसर मिलते रहते हैं; किन्तु एक स्वतन्त्र और सद्विचार-प्रिय मनुष्यके लिए वहाँकी हवा हानिप्रद है। शासन-विभागमें नियम और नीतियोंकी भरमार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कड़ाई और डाँट डपटसे बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोचविचारके पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि किसी ज़मींदारके यहाँ 'मुख़्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा किन्तु दीन खेतिहरोंसे रातदिन सम्बन्ध रहेगा—उनके साथ सद्व्यवहारका अवसर मिलेगा। साधारण जीवननिर्वाह होगा और विचार दृढ़ होंगे।

कुँवर विशालसिंहजी एक सम्पत्तिशाली ज़मींदार थे। पं० दुर्गानाथने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी सेवामें रखकर कृतार्थ कीजिये। कुँवरसाहबने इन्हें सिरसे पैर तक देखा और कहा—पण्डितजी, आपको अपने यहाँ रखनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होती; किन्तु आपके योग्य मेर यहाँ कोई स्थान नहीं देख पड़ता।

दुर्गानाथने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थानकी आवश्यकता नहीं है। मैं हरएक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नतापूर्वक देंगे मैं स्वीकार करूँगा। मैंने तो यह संकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईसके और किसीकी नौकरी न करूँगा। कुँवर विशालसिंहने अभिमानसे कहा—रईसकी नौकरी नहीं राज्य है। मैं अपने चपरासियोंको दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तंजेबके अँगरखे पहनकर निकलते हैं। उनके दरवाज़ों पर घोड़े बँधे हुए हैं। मेरे कारिन्दे पाँच रुपयेसे अधिक नहीं पाते किन्तु शादी विवाह वकीलोंके यहाँ करते हैं। न जाने उनकी कमाईमें क्या बरकत होती है! बरसों तनख़्वाहका हिसाब नहीं करते। कितने ऐसे हैं जो बिना तनख़्वाहके कारिन्दगी या चपरासगीरीको तैयार बैठे हैं। परन्तु अपना यह नियम नहीं। समझ लीजिये, मुख़्तार आम अपने इलाक़ेमें एक बड़े ज़मींदारसे भी अधिक रौब रखता है। उसका ठाटबाट उसकी हुकूमत छोटे छोटे राजाओंसे कम नहीं। जिसे इस नौकरीका चसका लग गया है उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पण्डित दुर्गानाथने कुँवरसाहबकी बातोंका समर्थन न किया जैसा कि करना उनको सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारीमें अभी कच्चे थे, बोले—मुझे अबतक किसी रईसकी नौकरीका चसका नहीं लगा है। मैं तो अभी कालेजसे निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणोंसे नौकरी करना चाहता हूँ जिन्हें आपने वर्णन किये। किन्तु इतने कम वेतनमें मेरा निर्वाह न होगा। आपके और नौकर असामियोंका गला दबाते होंगे। मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य्य न होंगे। यदि सच्चे नौकरका सम्मान होना निश्चय है तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न हो जायँगे।

कुँवरसाहबने बड़ी दृढ़तासे कहा—हाँ यह तो निश्चय है कि सत्यवादी मनुष्यका आदर सब कहीं होता है। किन्तु मेरे यहाँ तनख़्वाह अधिक नहीं दी जाती।

ज़मींदारके इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तरको सुनकर पण्डितजी कुछ खिन्न-हृदयसे बोले—तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको पहुँचा हो तो क्षमा कीजियेगा। किन्तु मैं यह आपसे कह सकता हूँ कि ईमानदार आदमी आपको इतना सस्ता न मिलेगा।

कुँवरसाहबने मनमें सोचा कि मेर यहाँ सदा अदालत कचहरी लगी ही रहती है। सैकड़ों रुपये तो डिगरी और तजवीज़ों तथा और और अँगरेज़ी कागज़ोंके अनुवादमें लग जाते हैं। एक अँगरेज़ीका पूर्ण पण्डित सहजहींमें मुझे मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नहीं देनी पड़ेगी। इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पण्डितजीकी बातका उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्यको कितना ही कम वेतन दिया जावे किन्तु वह सत्यको न छोड़ेगा, और न अधिक वेतन पानेसे बेईमान सच्चा बन सकता है। सच्चाईका रुपयेसे कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े बड़े धनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा; आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिये। मैं आपको एक इलाक़ेका अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देखकर तरक़्क़ी भी कर दूँगा।

दुर्गानाथजीने २०) मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँसे कोई ढाई मीलपर कई गाँवोंका एक इलाक़ा चाँदपारके नामसे विख्यात था। पण्डितजी इसी इलाक़ेके कारिन्दे नियत हुए।

[२]

पण्डित दुर्गानाथने चाँदपारके इलाक़ेमें पहुँच कर अपने निवासस्थानको देखा, तो उन्होंने कुँवरसाहबके कथनको बिलकुल सत्य पाया।

यथार्थमें रियासतकी नौकरी सुखसम्पत्तिका घर है। रहनेके लिए सुंदर बंगला है, जिसमें बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सैकड़ों बीघेकी सीर, कई नौकर चाकर, कितने ही चपरासी, सवारीके लिए एक सुन्दर टाँगन, सुख और ठाटबाटके सारे सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकारकी सजावट और विलास-युक्त सामग्री देखकर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। क्योंकि इसी सजे हुए बंगलेके चारों ओर किसानोंके झोंपड़े थे। फूसके घरोंमें मिट्टीके वर्तनोंके सिवा और सामान ही क्या था। वहाँके लोगोंमें वह बंगला कोटके नामसे विख्यात था। लड़के उसे भयकी दृष्टिसे देखते। उसके चबूतरे पर पैर रखनेका उन्हें साहस न पड़ता। इस दीनताके बीचमें इतना बड़ा ऐश्वर्य्ययुक्त दृश्य उनके लिए अत्यंत हृदयविदारक था। किसानोंकी यह दशा थी कि सामने आते हुए थरथर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा बर्ताव करते कि पशुओंके साथ भी वैसा नहीं होता है।

पहले ही दिन कई सौ किसानोंने पण्डितजीको अनेक प्रकारके पदार्थ भेंटके रूपमें उपस्थित किये, किन्तु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ! किसान प्रसन्न हुए किन्तु चपरासियोंका रक्त उबलने लगा। नाई और कहार खिदमतको आये, किन्तु लौटा दिये गये। अहीरोंके घरोंसे दूधसे भरा हुआ एक मटका आया, वह भी वापस हुआ। तमोली एक ढोली पान लाया, किन्तु वह भी स्वीकार न हुआ। असामी आपसमें कहने लगे कि कोई धर्मात्मा पुरुष आये हैं। परन्तु चपरासियोंको तो ये नई बातें असह्य हो गईं। उन्होंने कहा—हुजूर, अगर आपको ये चीज़ें पसन्द न हों तो न लें मगर रस्मको तो न मिटावें। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आवेगा तो उसे नये सिरेसे यह रस्म बाँधनेमें कितनी दिक्कत होगी? यह सब सुनकर

पंडितजीने केवल यही उत्तर दिया—जिसके सिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता ? एक चपरासीने साहस बाँधकर कहा—इन असामियोंको आप जितना गरीब समझते हैं उतने गरीब ये नहीं हैं। इनका ढंग ही ऐसा है। भेष बनाये रहते हैं। देखनेमें ऐसे सीधे सादे मानों बेसींगकी गाय हैं, लेकिन सच मानिये, इनमेंका एक एक आदमी हाईकोरटका वकील है।

चपरासियोंके इस वादविवादका प्रभाव पंडितजी पर कुछ न हुआ। उन्होंने प्रत्येक गृहस्थसे दयालुता और भाईचारेका आचरण करना आरम्भ किया। सबेरेसे ८ बजे तक वे गरीबोंको बिना दाम ओषधियाँ देते, फिर हिसाब-किताबका काम देखते। उनके सदाचरणने असामियोंको मोह लिया। मालगुज़ारीका रुपया जिसके लिए प्रतिवर्ष कुरकी तथा नीलामकी आवश्यकता होती थी इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानोंने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकारकी दिनोंदिन बढ़ती हो।

[३]

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजाके पालनपोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीजके लिए अनाज देते और मजूरी और बैलोंके लिए रुपये। फ़सल कटने पर एकका डेढ़ वसूल कर लेते। चाँदपारके कितने ही असामी इनके ऋणी थे। चैतका महीना था। फ़सल कट कट कर खलियानमें आरही थी। खलियानमेंसे कुछ नाज घरमें भी आने लगा था। इसी अवसर पर कुँवर साहबने चाँदपारवालोंको बुलाया और कहा—हमारा नाज और रुपया बेबाक़ कर दो। यह चैतका महीना है। जब तक कड़ाई न की जाय तुम लोग डकार नहीं लेते। इस तरह काम नहीं चलेगा। बूढ़े मलूकाने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने

मालिकसे बेबाक़ हो सकता है । कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देवेंगे । हमारी गर्दन तो सरकारकी मुट्ठीमें है ।

कुँवरसाहब—आज कौड़ी कौड़ी चुका कर यहाँसे उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला हवाला किया करते हो ।

मल्लूका (विनयके साथ)—हमारा पेट है, सरकारकी रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए । जो कुछ उपज है वह सब सरकारहीकी है।

कुँवरसाहबसे मल्लूकाकी यह वाचालता सही न गई । उन्हें इस पर क्रोध आगया; राजा रईस ठहरे। उन्होंने बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई और कहा—कोई है! जरा इस बुड्ढेका कान तो गरम करे, यह बहुत बढ़ बढ़ कर बातें करता है । उन्होंने तो कदाचित् धमकानेकी इच्छासे कहा, किन्तु चपरासियोंकी आँखोंमें चाँदपार खटक रहा था । एक तेज़ चपरासी क़ादिर ख़ाँने लपक कर बूढ़ेकी गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा ज़मीन पर जा गिरा । मल्लूकाके दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खड़े थे । बापकी ऐसी दशा देखकर उनका रक्त गर्म हो उठा। वे दोनों झपटे और क़ादिरख़ाँ पर टूट पड़े । धमाधम शब्द सुनाई पड़ने लगा । ख़ाँसाहबका पानी उतर गया । साफ़ा अलग जा गिरा । अचकनके टुकड़े टुकड़े हो गये । किन्तु ज़बान चलती रही ।

मल्लूकाने देखा, बात बिगड़ गई । वह उठा और क़ादिरख़ाँको छुड़ा-कर अपने लड़कोंको गालियाँ देने लगा । जब लड़कोंने उसीको डाँटा, तब दौड़कर कुँवरसाहबके चरणों पर गिर पड़ा । पर बात यथार्थमें बिगड़ गई थी । बूढ़ेके इस विनीत भावका कुछ प्रभाव न हुआ। कुँव-रसाहबकी आँखोंसे मानों आगके अङ्गारे निकल रहे थे । वे बोले—बेई-मान, आँखोंके सामनेसे दूर हो जा । नहीं तेरा खून पी जाऊँगा ।

बूढ़ेके शरीरमें रक्त तो अब वैसा न रहा था किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परन्तु यह फटकार सुनकर बोला—सरकार बुढ़ापेमें आपके दरवाज़े पर पानी उतर गया और तिसपर सरकार हमींको डाँटते हैं। कुँवरसाहबने कहा—तुम्हारी इज्ज़त अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनों लड़के सरोष बोले—सरकार अपना रुपया लेंगे कि किसीकी इज्ज़त लेंगे।

कुँवर साहब (ऐंठकर)—रुपया पीछे लेंगे। पहले देखेंगे कि तुम्हारी इज्ज़त कितनी है।

[४]

चाँदपारके किसान अपने गाँव पर पहुँचकर पण्डित दुर्गानाथसे अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवरसाहबका दूत पहुँचा और ख़बर दी कि सरकारने आपको अभी बुलाया है।

दुर्गानाथने असामियोंको परितोष दिया और आप घोड़े पर सवार होकर दरबारमें हाज़िर हुए।

कुँवर साहबकी आँखें लाल थीं। मुखकी आकृति भयंकर हो रही थी। कई मुख़्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे। पण्डितजीको देखते ही कुँवरसाहब बोले—चाँदपारवालोंकी हरकत आपने देखी?

पण्डितजीने नम्रभावसे कहा—जी हाँ, सुनकर बहुत शोक हुआ। ये तो ऐसे सरकश न थे।

कुँवर साहब—यह सब आपहीके आगमनका फल है। आप अभी स्कूलके लड़के हैं। आप क्या जानें कि संसारमें कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्ताव असामियोंके साथ ऐसा ही रहा तो फिर मैं जमीं-

दारी कर चुका। यह सब आपकी करनी है। मैंने इसी दरवाज़े पर असामियोंको बाँध बाँध कर उलटे लटका दिया है और किसीने चूँ तक न की। आज उनका यह साहस कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलायें!

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)--महाशय, इसमें मेरा क्या अपराध? मैंने तो जबसे सुना है तभीसे स्वयं सोचमें पड़ा हूँ।

कुँवर साहब—आपका अपराध नहीं तो किसका है? आपहीने तो इनको सर चढ़ाया। बेगार बन्द कर दी, आपही उनके साथ भाई-चारेका बर्ताव करते हैं, उनके साथ हँसी मज़ाक करते हैं। ये छोटे आदमी इस बर्तावकी क़दर क्या जानें। किताबी बातें स्कूलोंहीके लिए हैं। दुनियाके व्यवहारका कानून दूसरा है। अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इन बदमाशोंको इस सरकशीका मज़ा चखाया जाय। असामियोंको आपने मालगुज़ारीकी रसीदें तो नहीं दी हैं?

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नहीं, रसीदें तैयार हैं, केवल आपके हस्ताक्षरोंकी देर है।

कुँवर साहब (कुछ संतुष्ट होकर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन अच्छे हैं। अब आप इन रसीदोंको चिरागअलीके सिपुर्द कीजिये। इन लोगों पर बक़ाया लगानकी नालिश की जायगी, फ़सल नीलाम करा लूँगा। जब भूखों मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अबतक वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋणके खातेमें चढ़ा लीजिये। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुज़ारीके मदमें नहीं क़र्ज़के मदमें वसूल हुआ है। बस।

दुर्गानाथ चिन्तित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्तिका सामना करना पड़ेगा, जिससे बचनेके लिए, इतने सोच विचारके बाद, इस शान्तिकुटीरको ग्रहण किया था। क्या जान बूझ

कर इन गरीबोंकी गर्दन पर छुरी फेरूँ, इस लिए कि मेरी नौकरी बनी रहे। नहीं, यह मुझसे न होगा। बोले—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा?

कुँवर साहब (क्रोधसे)—क्या इतना कहनेमें भी आपको कोई उज्र है?

दुर्गानाथ (द्विविधामें पड़े हुए)—जी यों तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालयमें मैंने गवाही कभी नहीं दी है। सम्भव है कि यह कार्य्य मुझसे न हो सके। अतः मुझे तो क्षमा ही कर दिया जाय।

कुँवरसाहब (शासनके ढंगसे)—यह काम आपको करना पड़ेगा, इसमें हाँ-नहींकी आवश्यकता नहीं। आग आपने लगाई है, बुझावेगा कौन?

दुर्गानाथ (दृढ़ताके साथ)—मैं झूठ कदापि नहीं बोल सकता, और न इस प्रकार शहादत दे सकता हूँ।

कुँवर साहब (कोमल शब्दोंमें)—कृपानिधान, यह झूठ नहीं है। मैंने झूठका व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप रुपयेका वसूल होना अस्वीकार कर दीजिये। जब असामी मेरे ऋणी हैं तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋणके मदमें वसूल करूँ या मालगुज़ारीके मदमें। यदि इतनीसी बातको आप झूठ समझते हैं तो आपकी ज़बरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसी सच्चाईके लिए संसारमें स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे हैं। इस सेवकधर्म पर विचार कीजिये। आप शिक्षित और होनहार पुरुष हैं। अभी आपको संसारमें बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है। अभीसे आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने

जीवनमें आपको आपत्ति और निराशाके सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है किन्तु उसकी भी सीमा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' अब अधिक सोच विचारकी आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुँवर साहब पुराने खुर्राट थे। इस फैंकनैतसे युवक खिलाड़ी हार गया।

[५]

इन घटनाके तीसरे दिन चाँदपारके असामियों पर बक़ाया लगानकी नालिश हुई। समन आये। घर घर उदासी छा गई। समन क्या थे, यमके दूत थे। देवी देवताओंकी मन्नतें होने लगीं। स्त्रियाँ अपने घरवालोंको कोसने लगीं, और पुरुष अपने भाग्यको। नियत तारीख़के दिन गाँवके गँवार कन्धे पर लोटा डोर रक्खे और अँगोछेमें चबेना बाँधे कचहरीको चले। सैकड़ों स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे पीछे जाते थे। मानों अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पंडित दुर्गानाथके लिए ये तीन दिन कठिन परीक्षाके थे। एक ओर कुँवरसाहबकी प्रभावशालिनी बातें, दूसरी ओर किसानोंकी हाय हाय। परन्तु विचार-सागरमें तीन दिन तक निमग्न रहनेके पश्चात् इन्हें धरतीका सहारा मिल गया। उनकी आत्माने कहा—यह पहली परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभके लिए इतने गरीबोंको हानि न पहुँचाऊँगा।

दस बजे दिनका समय था। न्यायालयके सामने मेला सा लगा हुआ था। जहाँ तहाँ श्यामवस्त्राच्छादित देवताओंकी पूजा हो रही थी। चाँदपारके किसान झुण्डके झुण्ड एक पेड़के नीचे आकर बैठे।

उनके कुछ दूर पर कुँवरसाहबके मुख़्तार आम, सिपाहियों और गवाहोंकी भीड़ थी। ये लोग अत्यंत विनोदमें थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानीमें पहुँचकर कल्लोलें करती हैं, उसी भाँति ये लोग भी आनन्दमें चूर थे। कोई पान खा रहा था, कोई हलवाईकी दूकानसे पूरियोंके पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़के नीचे चुप चाप उदास बैठे थे कि आज न जानें क्या होगा, कौन आफ़त आयेगी, भगवानका भरोसा है। मुकदमेकी पेशी हुई। कुँवर साहबकी ओरके गवाह गवाही देने लगे कि ये असामी बड़े सरकश हैं। जब लगान माँगा जाता है तो लड़ाई झगड़े पर तैयार हो जाते हैं। अबकी इन्होंने एक कौड़ी भी नहीं दी।

क़ादिर ख़ाँने रोकर अपने सिरकी चोट दिखाई। सबके पीछे पंडित दुर्गानाथकी पुकार हुई। उन्हींके बयान पर निपटारा था। वकील साहबने उन्हें खूब तोतेकी भाँति पढ़ा रक्खा था, किन्तु उनके मुखसे पहला वाक्य निकला था कि मजिस्ट्रेटने उनकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा। वकील साहब बगलें झाँकने लगे। मुख़्तार आमने उनकी ओर घूर कर देखा। अहलमद, पेशकार आदि सबके सब उनकी ओर आश्चर्य्यकी दृष्टिसे देखने लगे।

न्यायाधीशने तीव्र स्वरमें कहा—तुम जानते हो कि माजिट्रेस्टके सामने खड़े हो ?

दुर्गानाथ (दृढ़तापूर्वक)—जी हाँ भली भाँति जानता हूँ।

न्याया०—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषणका अभियोग लगाया जाता है।

दुर्गानाथ—अवश्य, यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकीलने कहा—जान पड़ता है किसानोंके दूध घी और भेंट आदिने यह कायापलट कर दी है और न्यायाधीशकी ओर सार्थक दृष्टिसे देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओंका अधिक तजरुबा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तो इन असामियोंने सब रुपया बेबाक़ कर दिया है?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगानकी एक कौड़ी भी बाकी नहीं है।

न्यायालय—रसीदें क्यों नहीं दीं?

दुर्गानाथ—मेरे मालिककी आज्ञा।

[६]

मजिस्ट्रेटने नालिशें डिसमिस कर दीं। कुँवरसाहबको ज्यों ही इस पराजयकी खबर मिली, उनके कोपकी मात्रा सीमासे बाहर हो गई। उन्होंने पंडित दुर्गानाथको सैकड़ों कुवाक्य कहे——नमकहराम विश्वास-घाती दुष्ट। ओह मैंने उसका कितना आदर किया, किन्तु कुत्तेकी पूँछ कहीं सीधी हो सकती है! अन्तमें विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि पं० दुर्गानाथ मजिस्ट्रेटका फैसला सुनते ही मुख़्तार आमको कुंजियाँ और कागजपत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें इस कार्य्यके फलमें कुछ दिन हल्दी और गुड़ पीनेकी आवश्यकता पड़ती!

कुँवरसाहबका लेन देन विशेष अधिक था। चाँदपार बहुत बड़ा इलाक़ा था। वहाँके असामियों पर कई सौ रुपये बाक़ी थे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूल होनेकी कोई आशा नहीं। इस पण्डितने असामियोंको बिलकुल बिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर। अपने कारिन्दों और मंत्रियोंसे सम्मति ली। उन्होंने भी यही कहा—अब वसूल होनेकी कोई सूरत नहीं। कागज़ात न्यायालयमें पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा। किन्तु रुपया वसूल होना कठिन है। उज़रदारियाँ होंगी। कहीं हिसाबमें कोई

भूल निकल आई तो रही सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इला-क़ोंका रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवरसाहब पूजापाठसे निश्चिन्त हो अपने चौपालमें बैठे, तो क्या देखते हैं कि चाँदपारके असामी झुंडके झुंड चले आ रहे हैं। उन्हें यह देखकर भय हुआ कि कहीं ये सब कुछ उपद्रव तो न करें, किन्तु किसीके हाथमें एक छड़ी तक न थी। मल्लूका आगे आगे आता था। उसने दूरहीसे झुककर वन्दना की। ठाकुरसाहबको ऐसा आश्चर्य्य हुआ, मानों वे कोई स्वप्न देख रहे हों।

[७]

मल्लूकाने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगोंसे जो कुछ भूलचूक हुई उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हजूरके चाकर हैं; सरकारने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर यही निगाह रहे।

कुँवर साहबका उत्साह बढ़ा। समझे कि पंडितके चले जानेसे इन सबोंके होश ठिकाने हुए हैं। अब किसका सहारा लेंगे। उसी खुर्राँ-टने इन सबोंको बहका दिया था। कड़ककर बोले—वे तुम्हारे सहायक पंडित कहाँ गये? वे आ जाते तो ज़रा उनकी ख़बर ली जाती।

यह सुनकर मल्लूकाकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह बोला—सर-कार उनको कुछ न कहें। वे आदमी नहीं, देवता थे। जवानीकी सौगन्ध है, जो उन्होंने आपकी कोई निन्दा की हो। वे बेचारे तो हम लोगोंको बार बार समझाते थे कि देखो, मालिकसे बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं। हमसे कभी एक लोटा पानीके रवादार नहीं हुए। चलते चलते हम लोगोंसे कह गये कि मालिकका जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले चुका देना। आप हमारे मालिक हैं। हमने आपका

बहुत खाया पीया है। अब हमारी यही विनती सरकारसे है कि हमारा हिसाब किताब देखकर जो कुछ हमारे ऊपर निकले बताया जाय। हम एक एक कौड़ी चुका देंगे तब पानी पीयेंगे।

कुँवरसाहब सन्न हो गये। इन्हीं रुपयोंके लिए कई बार खेत कटवाने पड़े थे। कितनी बार घरोंमें आग लगवाई। अनेक बार मारपीट की। कैसे कैसे दंड दिये। और आज ये सब आपसे आप सारा हिसाब किताब साफ करने आये हैं! यह क्या जादू है!

मुख़्तारआमसाहबने कागज़ात खोले और असामियोंने अपनी अपनी पोटलियाँ। जिसके जिम्मे जितना निकला, बे-कान पूछ हिलाये उसने द्रव्य सामने रख दिया। देखते देखते सामने रुपयोंका ढेर लग गया। ६०० रुपया बातकी बातमें वसूल हो गया। किसीके जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्यायकी विजय थी। कठोरता और निर्दयतासे जो काम कभी न हुआ वह धर्म और न्यायने पूरा कर दिखाया।

जबसे ये लोग मुकद्दमा जीत कर आये तभीसे उनको रुपया चुकानेकी धुन सवार थी। पंडितजीको वे यथार्थमें देवता समझते थे। रुपया चुका देनेके लिए उनकी विशेष आज्ञा थी। किसीने अन्न बेचा, किसीने बैल, किसीने गहने बन्धक रक्खे। यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पंडितजीकी बात न टाली। कुँवरसाहबके मनमें पंडितजीके प्रति जो बुरे विचार थे वे सब मिट गये। उन्होंने सदासे कठोरतासे काम लेना सीखा था। उन्हीं नियमों पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलतामें बहुत बड़ी शक्ति है।

ये असामी मेरे हाथसे निकल गये थे। मैं इनका क्या बिगाड़ सकता था? अवश्य यह पंडित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमें

दूरदर्शिता न हो, कालज्ञान न हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह निस्पृह और सच्चा पुरुष था ।

[८]

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती तब तक हमारी दृष्टिमें उसका गौरव नहीं होता । हरी दूब भी किसी समय अशर्फ़ियोंके मोल बिक जाती है । कुँवरसाहबका काम एक निस्पृह मनुष्यके बिना रुक नहीं सकता था । अतएव पंडितजीके इस सर्वोत्तम कार्य्यकी प्रशंसा किसी कविकी कवितासे अधिक न हुई । चाँदपारके असामियोंने तो अपने मालिकको कभी किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाया, किन्तु अन्य इलाक़ोंवाले असामी उसी पुराने ही ढंगसे चलते थे । उन इलाक़ोंमें रगड़-झगड़ सदैव मची रहती थी । अदालत, मारपीट, डाँट-डपट सदा लगी रहती थी । किन्तु ये सब तो ज़मींदारीके शृंगार हैं । बिना इन सब बातोंके ज़मींदारी कैसी ? क्या दिन भर बैठे बैठे वे मक्खियाँ मारें ?

कुँवरसाहब इसी प्रकार पुराने ढँगसे अपना प्रबन्ध सँभालते जाते थे । कई वर्ष व्यतीत हो गये । कुँवरसाहबका कारबार दिनों दिन चमकता ही गया । यद्यपि उन्होंने ५ लड़कियोंके विवाह बड़ी धूमधामके साथ किये, परन्तु तिस पर भी उनकी बढ़तीमें किसी प्रकारकी कमी न हुई । हाँ, शारीरिक शक्तियाँ अवश्य कुछ कुछ ढीली पड़ती गईं । बड़ी भारी चिन्ता यही थी कि इस बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्यका भोगनेवाला कोई उत्पन्न न हुआ । भानजे भतीजे और नवासे इस रियासत पर दाँत लगाये हुए थे ।

कुँवरसाहबका मन अब इन सांसारिक झगड़ोंसे फिरता जाता था । आख़िर यह रोना धोना किसके लिए ? अब उनके जीवन-नियममें एक

परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी कभी साधु सन्त धूनी रमाये हुए देख पड़ते। स्वयं भगवद्गीता और विष्णुपुराण पढ़ते। पारलौकिक चिन्ता अब नित्य रहने लगी। परमात्माकी कृपा! साधु सन्तोंके आशीर्वादसे बुढ़ापेमें उनके एक लड़का पैदा हुआ। जीवनकी आशायें सफल हुईं। दुर्भाग्यवश पुत्रके जन्महीसे कुँवरसाहब शारीरिक व्याधियोंमें ग्रस्त रहने लगे। सदा वैद्यों और डाक्टरोंका ताँता लगा रहता था। लेकिन दवाओंका उलटा प्रभाव पड़ता। ज्यों त्यों करके उन्होंने ढाई वर्ष बिताये। अन्तमें उनकी शक्तियोंने ज़वाब दे दिया। उन्हें मालूम हो गया कि अब संसारसे नाता टूट जायगा। अब चिन्ताने और घेर दबाया—यह सारा माल असबाब, इतनी बड़ी सम्पत्ति किस पर छोड़ जाऊँ? मनकी इच्छायें मनहीमें रह गईं। लड़केका विवाह भी न देख सका। उसकी तोतली बातें सुननेका भी सौभाग्य न हुआ। हाय अब इस कलेजेके टुकड़ेको किसे सौपूँ, जो इसे अपना पुत्र समझे। लड़केकी माँ स्त्रीजाति न कुछ जाने न समझे। उससे कारबार सँभ-लना कठिन है। मुख्तार आम, गुमाश्ते, कारिन्दे कितने हैं परन्तु सबके सब स्वार्थी, विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट आव वार्ड्सके सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दबायेगा कोई उधर। अनाथ बालकको कौन पूछेगा? हाय, मैंने आदमी नहीं पहिचाना! मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष था। यदि वह कहीं मिल जावे तो इस अनाथ बालकके दिन फिर जाँय। उसके हृदयमें करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालक पर तरस खायगा। हा! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे? मैं उस देवताके चरण धोकर माथे पर चढ़ाता। आँसुओंसे उसके चरण धोता। वही यदि हाथ लगावे तो यह मेरी डूबती हुई नाव पार लगे।